कृष्ण-सुदामा

पौराणिक नाटक।

०-फर्म बाबू बैजनाथ प्रसाद बुकसेलर, ब[illegible] मूल्य ॥)

कृष्ण-सुदामा नाटक पारसी थियेट्रिकल कम्पनी

* श्रीहरिः *

कृष्ण-सुदामा

बम्बई की बड़ी बड़ी मशहूर पारसी थियेट्रिकल कम्पनियों का लोकप्रिय नाटक।

लेखक—

पं० हरिनाथ व्यास।

प्रकाशक-फर्म

बाबू बैजनाथ प्रसाद बुकसेलर,

राजादरवाजा बनारस सिटी।

प्रेमोपहार !

श्रीयुत ______________________

____

____
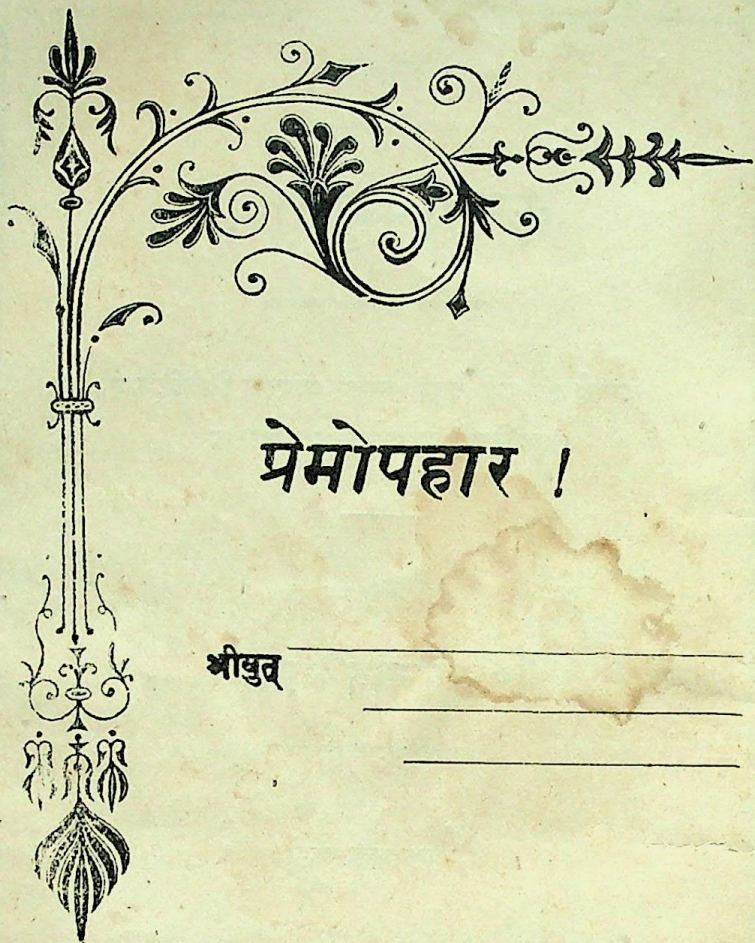
भवदीय-

समर्पण !

पूज्य गुरुदेव !

दो०—काहू को बल बाहु धन, काहू को बल आन ।
रामशरण तव बल सदा, निर्भय रहत महान ॥

यद्यपि मेरे हृदय पर आपकी सेवाके प्रति सच्चा प्रेम आच्छादित है तो भी संसारी माया-जाल में फँसे रहने के कारण सेवा से वंचित ही रहता हूँ कलि महाराज के करालचक्र और विश्व बिजयी माया के जाल में फँसे रहने पर भी आपके दिये हुए सद्उपदेशों का यही फल है, कि आज मैं परम भक्त सुदामा जी की अनन्य भक्ति के भक्तिरस से अपने हृदय को पवित्र कर सच्चे सेवक भाव से आपके चरण कमलों में यह पुस्तिका लिखकर अर्पण करता हूँ ।

आपका लघु-शिष्य—

रामशरण, व्यास ।

पात्र परिचय ।

पुरुष-पात्र ।

श्रीकृष्ण भगवान	आदिदेव
सुदामा—	श्रीकृष्ण का गुरुभाई
रामशरन लक्ष्मीशरन	सुदामा के पुत्र
दरिद्र—	यथा नाम तथा गुण
सेठ लक्ष्मी चन्द	विदर्भ देश का धनी सूम
बिट्ठल दास—	लक्ष्मी चन्द का बड़ा लड़का
रामू	,, दूसरा लड़का
न्यायपाल—	द्रविड़ देश का राजा
मन्त्री—	न्याय पाल का मन्त्री
सौभाग्य चन्द— धर्मपाल—	द्रविड़ देश के रहने वाले
केवट—	द्वारिका के समुद्र का नाविक

स्त्री पात्र ।

भक्ति—	जग प्रसिद्ध है
माया	भगवान् की माया
सत्यभामा रुक्मिणी	श्रीकृष्ण की पटरानियाँ
सुशीला	सुदामा की स्त्री
पड़ौसन	सुशीला की पड़ौसन
दयावती	लक्ष्मीचन्द की धर्म पत्नी

इसके अतिरिक्त नट, नटी, सहेली, चोबदार, साधु, सिपाही, राक्षस, द्वारपाल आदि ।

——*——

* श्रीसीतारामाय नमः *

भक्त-सुदामा ।
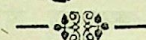
स्थान—रङ्गभूमि ।

* मङ्गलाचरण *

(इस दृश्य को नाटक की प्रस्तावना समझिये)

(सूत्रधार, नटी, बालाओं का भारतमाता की बन्दना करते दिखाई देना)

गायन ।

सूत्र, नटी, बालाएँ—देव भूमि नमस्कार !

परमानन्द को भण्डार, सर्व सृष्टि की आधार ।
रटत तोहें बार बार, आर्य्य संतति नर और नार ॥
देव भूमि नमस्कार !
ध्यान में धरें विरक्त, भाव से भजें सुभक्त ।
त्यागते हैं अघ असक्त, भोगते हैं कष्ट अपार ॥
देव भूमि नमस्कार !

सूत्रधार—(स्वर सहित) वन्देमातरम्—

मुक्ति साधन स्वर्ग द्वारा मंत्र वंदेमातरम् ।
प्रेम सिन्धु भक्ति धारा मंत्र वंदेमातरम् ॥
प्यारे प्राणों से भी प्यारा मंत्र वंदेमातरम् ।
धार्मिक उद्देश्य हमारा मंत्र वंदेमातरम् ॥

नटी—आर्य्यपुत्र ! आजकल आपकी रसना आठों पहर वन्दे-मातरम्की रट लगा रही है । सारी धार्मिक क्रियाओं को छोड़ कर भारतोपासना की धुन समा रही है ।

कर्म बन्धन में पड़े हो धर्म चर्चा छोड़ कर
देशपूजा में लगे हो देव अर्चा छोड़कर ॥

सूत्र०—तो प्रिये ! बन्देमातरम् से अधिक कल्याणकारी मन्त्र कौनसा ? भारत देश से अधिक देवी देवता कौनसा ?

गर्भ से जन्म देती है मरण तक जो खिलाती है।
जो मर जाने के भी पश्चात् छाती पर सुलाती है॥
हमारे पूर्वजों ने मर के जिस भूमि को भेटा है।
न जो उसका करे सुमिरण बड़ा किस्मत का हेटा है॥

नटी—परन्तु प्रथम आत्म-कल्याण और पश्चात् सर्व कल्याण है और ईश्वर उपासना ही आत्म-कल्याण का मार्ग है।

सूत्र०—तुम्हारा कथन यह है, कि बिना जड़ को पानी दिये ही हम फल की आशा कर सकते हैं, जिस शरीर रूपी राष्ट्र के हम रोम मात्र हैं उसकी भलाई हुए बिना हम अपनी कुशल की आशा कैसे लगा सकते हैं ?

निज देश के यश से हि हमें नामवरी है।
सरसब्ज अगर जड़ है तो डाली भी हरी है॥
है जाति के सम्मान से कुछ नाम हमारा।
है जाति के कल्याण से कल्याण हमारा॥

नटी-परन्तु जिस भारत भूमि की पवित्र रजमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी ने अपने मुरली की मधुर तानोंसे पवित्र गीता द्वारा स्वाधीनताके शुद्ध भावोंको गुञ्जा दिया है। जिस देवभूमिकी महान् आत्माओं को श्रीरामचन्द्रजी के धनुषकी टङ्कोर ने एक बार क्षात्र-पराक्रम का शंखनाद सुना दिया है उसका तो सदैव कल्याण ही कल्याण है।

सूत्र०—तो क्या तुम्हारा यह विचार है कि भारत में सुख का सञ्चार है। नहीं नहीं देवी ! तुम भूल करती हो, इस समय भारत अति दीन दुखी और निस्सहाय है—

अमन कैसा कहाँ का सुख यहाँ वह तङ्गदस्ती है।
कि नब्बे सैकड़ा भाइयों को दिन भर फाकामस्ती है॥

नटी--प्रभो ! आप यह क्या कह रहे हैं ?

सूत्र०--सत्य कह रहा हूँ। इतना ही नहीं वरन् भारत देश में तो वह आग लग गई है कि—

पी रहा है खून भाई का जो भाई आज है।
साथी सब प्रपञ्ची और मित्र दगाबाज है॥
मुफलिसी में नारियाँ हैं भागतीं पति छोड़ कर।
बाप बेटे में छिड़ा है युद्ध नाता तोड़ कर॥

नटी—नाथ ! क्या ! ऐसा समय आगया ?

सूत्र०—हाँ अब वह समय नहीं रह गया कि जिस समय-

बलिहार जीवन कर दिया भाई पै लक्ष्मण बीर ने ।
सोचा न समझा दे दिया दो लोक कृष्ण गम्भीर ने ॥
घोर संकट सह गई नारी सुशीला धर्म पर ।
पितृ-भक्ति कर गया हो श्रवण बेटा भूमि पर ॥

नटी-प्राणेश ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी का ऐसा किसके साथ प्रेम था जिसको उन्होंने दो लोक दे दिये और सुशीला देवी किस महापुरुष का धर्म-पत्नी थीं ?

सूत्र०—देवी द्रविड़ देशके रहने वाले सुदामा नाम के एक दीन ब्राह्मण श्रीकृष्ण चन्द्र जी के परम मित्र थे, और धर्मपरायणा साध्वी सुशीला, सुदामा जी की धर्म पत्नी थीं ।

नटी-नाथ ! भगवान श्रीकृष्ण तो द्वारकानिवासी, राजराजेश्वरों के भी गुरु उनकी मित्रता एक दरिद्री ब्राह्मण से क्यों कर हुई ?

सूत्र-महर्षि सान्दीपन की पाठशाला में भगवान श्रीकृष्ण और सुदामा दोनों ही विद्या-ध्ययन करते थे ।

नटी-याने दोनों गुरु भाई थे ?

सूत्र०-हाँ परन्तु आपसमें दोनोंका प्रेम सगे भाईसे भी बढ़कर था ।

नटी-अब शङ्का इस बात की होती है, कि आपस में दोनों का इतना अधिक प्रेम होते हुए भी, भगवान श्रीकृष्ण सब सुख सम्पन्न और सुदामा दरिद्री क्यों हुआ ?

सूत्र०-देवी ! यह कथा बहुत बड़ी और रहस्य मय है । यदि मैं विस्तार के साथ कहने लग जाऊँगा तो सारा समय ही व्यतीत हो जायगा । देर हो जाने से दर्शक घबड़ा उठे हैं । इनके मनोरञ्जनार्थ शीघ्र ही कोई अभिनय दिखाना चाहिये ।

नटी—परन्तु मेरे हृदय को सन्तोष न होगा !

सूत्र०-तुम्हारे सन्तोषार्थ आज मैं 'श्रीकृष्ण सुदामा' नाटक का अभिनय रचाता हूँ और सारी शङ्काओं का उसी के द्वारा समाधान कराता हूँ ।

नटी-उपकार ! नाथ उपकार !!

सूत्र०--आजकल के झूठी मित्रता का दम भरने वाले स्वार्थी मित्रों

को दिखला दूँगा कि सच्चे मित्रों का क्या कर्तव्य है। आज इसी स्वार्थ ने ही हमारे पूर्वजों की उज्ज्वल कीर्ति को धूल में मिला कर देश को कङ्गाल बना दिया है।

नटी-सत्य है प्राणनाथ! स्वर्ग तुल्य हमारा प्यारा भारतवर्ष अन्य देशों द्वारा पददलित हो रहा है और हमें कुछ भी नहीं सूझ रहा है।

कुछ तो भारतवर्ष को मारा डकैती लूट ने।
और जो बाकी थी शक्ति लूटली इस फूट ने॥
हो रही है गैर हालत आज भारत देश की।
हो गई प्राचीन सब विद्यायें गारत देश की॥

सूत्र०-प्यारी! अब भारत के गान को समाप्त कर पात्रों को शीघ्र रङ्गमञ्च पर आने की सूचना दो।

नटी—जो आज्ञा— गायन

जगत में स्वर्ग हमारा देश।
पूर्ण सुखधाम करें विश्राम॥
राम घनश्याम करो परणाम।
जगत में स्वर्ग हमारा देश॥

सूत्र०-उत्तर में कैलाश गिरि पर गिरिजा सहित महेश
दक्षिण देव भूमि कहलाती करते रमण रमेश॥
पूरब में जगदीश विराजें मध्य वसें अवधेश।
पश्चिम में मनमोहन मुरारी नन्द कुँवर ऋषिकेश॥ (प्रस्थान)

——*——

दृश्य--पहला

स्थान—जङ्गल।

(श्रीकृष्ण और सुदामा लकड़ियों का बोझ लेकर आते हैं।)

सुदामा—भाई कृष्ण, अब और लकड़ियाँ तोड़ कर क्या होगा? आज के लिये तो इतनी ही बहुत हैं।

कृष्ण-यदि तुम्हारा मन पेड़ों पर चढ़नेसे घबरा उठा हो, तो तुम यहीं पर बैठ जाओ मैं जाता हूँ और थोड़ी सी लकड़ी तोड़ लाता हूँ।
(प्रस्थान)

सुदामा-(स्वयम्) ओफ्फो! बला की शक्ति है। इसके साथ तो कोई भी काम करना अच्छा नहीं।

हरा देता है सहपाठी को जब यह पाठ पढ़ता है।
गिरा देता है सारा वृद ही जब आप चढ़ता है॥
मिला जब काम करने को उसे कर यों दिखाया है।
कि मानों पेट से ही माँ के यह सब सीख आया है॥

नहीं मैं भूल कर रहा हूँ। उस दिन अश्विनी कुमार ने कहा था, कि श्रीकृष्ण परब्रह्म परमात्मा हैं। परन्तु इस कृष्ण ने तो ऐसी माया की है कि मैं उस बात को भूल जाता हूँ—

प्रेम कहता है मुझे यह मित्र है और यार है।
ज्ञान कहता है, नहीं, यह ब्रह्म का अवतार है॥
छिड़ी हुई आजकल दोनों में यह तकरार है।
जीत जाता है जो फिर उसकी हि होती हार है॥

(भूख मालूम होती है)

जाना, जाना, रोज का भिक्षुक भिक्षा माँग रहा है। अच्छा तेरी भूख को मिटाता हूँ, गुरुआनीजी के दिये हुए दो मुट्ठी चने चबाता हूँ।

(सुदामा का चना खाना, श्रीकृष्ण का देखना)

कृष्ण—(स्वयम्) यह क्या ? सुदामा मुझे छोड़कर अकेला ही चने खा रहा है, इस कपट से दरिद्रता को अपना मेहमान बना रहा है।

अन्याय कर इकले सुदामा ने चने खाये हैं आज।
इसलिये है आज से दारिद्र इसके सिर का ताज॥

(प्रगट) कहो भाई सुदामा क्या कह रहे हो ?

सुदामा—(घबराकर) क्या, तुम आ गये ? हाँ अब तो लकड़ियाँ बहुत हो गईं बोझ उठाकर चलो।

कृष्ण—चलो कहाँ, ठहरो। मुझे भूख लग रही है। माताजी ने जो चने दिये थे वह कहाँ है निकालो।

सुदामा—चने......।

कृष्ण—(स्वयम्) लज्जित हो गया, (प्रगट) हाँ भाई, उन चनों के खाने से कुछ आधार हो जायगा।

सुदामा—भाई कृष्ण, क्या कहूँ, वो चने तो......

कृष्ण—क्या किसी भिक्षुक को दान कर दिये ? अच्छा ही किया।

सुदामा—नहीं भाई, किसी भिक्षुक को दान नहीं कर दिये वो चने तो...

कृष्ण—अरे भाई पूरा हाल क्यों नहीं कहते ? वो चने तो क्या ?
सुदामा—मैं खा गया।
कृष्ण—खा गया तो क्या हुआ ? यह भी अच्छा ही हुआ।
सुदामा—परन्तु भाई तुम भूखे रह गये।
कृष्ण—तो इसकी क्या चिन्ता है। (स्वयम्)

न स्वार्थी बन चने खाता न कङ्गाली बुलाता यह।
दुःख होता मेरे मन में कि सहपाठी कहाता यह॥
क्या करूँ कुछ बस नहीं, था मोकद्दर में यही।
जिल्लत उठाना अब पड़ेगा, खायगा ठोकर सही॥
किस्मत में लिखा था यही इस यार के।
हो गया जाहिर सभी खाते हो दाना चार के॥

सुदामा—इसने बुरा माना नहीं कुछ भी मेरी तकसीर का।
नाकिसे बुत मैं, नमूना ये सब की तस्वीर का॥

गायन।

सुदामा—हो गई अक्ल गन्दी हमारी, ये खता मन की सारी।
कृष्ण—है शर्म जितनी, नहीं बात उतनी।
सुदामा छोड़कर शर्मोहया खा लिया सारा चना।
कृष्ण—तो हुआ क्या ? न था तुमको खाना मना॥
क्यों सूरत हुई तोरी कारी॥

दूसरा-दृश्य

स्थान—बन मार्ग।

(एक ओर से भक्ति दूसरी ओर से दरिद्र और माया का प्रवेश)

माया—(भक्ति को देखकर) यही है, यही है, मेरे कार्य में बाधा देने वाली यही है।

दरिद्र—न घबराओ, अब यह मेरे पाले पड़ी है।

भक्ति—बाज आ, माया ! तू अपनी हठ से बाज आ। मेरे भक्तों पर अपना जाल न बिछा।

माया—ओ भिखारिणी, सावधान! मेरे सामने अभिमान न दिखा नहीं तो आज तू अपमानित होकर जायगी।

भक्ति—माया, इतना घमण्ड न दिखा। इतनी अनीति न कर।

भक्तों को कष्ट देने की इच्छा करना, भगवान को सताना है।

दरिद्र—परन्तु परमात्मा ने जो नियम बनाये हैं तू उनको तोड़ने की चेष्टा न कर।

भक्ति—दरिद्र! मैं तुझे भी सावधान करती हूँ, कि तू मेरे भक्तका पीछा छोड़, पाप कमाने से मुँह मोड़। कारण कि तू भक्तों को महिमा से अनजान है इसलिये माया से बहकाने पर तेरा यह ध्यान है।

दरिद्र—जानता हूँ! भक्तों की महिमा को अच्छी तरह से जानता हूँ। परन्तु जिसे मैं सताना चाहता हूँ उसे तू सुख पहुँचाने की चेष्टा न कर।

भक्ति—करूँगी और अवश्य करूँगी। प्रभुके प्यारे भक्तोंको सहायता मैं स्वयम् करूँगी। तू क्या? यदि संसार की तमाम शक्तियाँ एकत्र हो उसको दुःख पहुँचाने के लिए टूट पड़ें, तो भी मैं अपने भक्त सुदामा की सहायता अवश्य करूँगी। यदि तू अपमानित होना नहीं चाहता है तो भक्त सुदामा का पीछा छोड़ दे।

माया—सावधान दरिद्र! कहो इस पाखण्डिनीके बहकावे में न आ जाना। बना बनाया काम न बिगाड़ना।

दरिद्र—नहीं, ऐसा नहीं होगा।

भक्ति—नहीं होगा?

माया—हाँ, हाँ, नहीं होगा।

भक्ति—अच्छा, तो जावो। तुम दोनों मिलकर अपना बल दिखलाओ। इस बार के अनुष्ठान में तुम दोनों का बल और अभिमान को मैं चूर कर दूँगी। सुदामासे तुम्हारे सम्बन्ध को दूर कर दूँगी।

त्याग कर अभिमान को, मन में विचारो धर्म को।
प्रभु-भक्त को बाधा न दो, पालन करो निजकर्म को॥

माया—अरी भिखारिणी, यह उपदेश तूं अपनी झोली में बाँध रख। तेरे भिखारी भक्तोंके काम आयेगा। यहां तेरी गीता का पाठ कौन सुनता है? किसे सुनाती है?

भक्ति—तुझे और तेरे (दरिद्र को दिखा कर) इस अनुयायी को।

दरिद्र—यह उपदेश मेरे काम में आयेगा।

भक्ति—तो तूँ पछतायगा। मेरी भुजा का बल तेरे लिये इन्द्र का बज्र होगा। मेरा अनुष्ठान तेरे लिये तीक्ष्ण बाण होगा। मेरा उपदेश

विष होगा। मेरा क्रोध तेरे लिये शङ्कर का त्रिशूल होगा—

न खोजे से मिलेगी धूरि तेरे घात और छल की।
नहीं तू जानता महिमा मेरी शक्ति औ भुज बल की॥

माया—भक्ति, भक्ति, इतना अभिमान न कर।

सुदामा भक्त तेरा अब, मरेगा रात दिन भूखा।
जहाँ बैठेगा जाकर वह, वहाँ होगा सदा सूखा॥

भक्ति—ओफ्फो! इतना घमण्ड!

माया—तेरी और तेरे भक्त की परीक्षा के लिये।

भक्ति—इतनी हिम्मत!

माया—तुझ पर अपना प्रभाव डालने के लिये।

भक्ति—ता जा और कर दिखा—

मेरी क्रोधाग्नि में पड़कर, तुम्हारा नाश होवेगा।
मिलोगे फिर न खोजे से, पता आकाश होवेगा॥

दरिद्र—खैर, देखा जायगा।

माया—हाँ, हाँ, चलो अब कर दिखाया जायगा।

भक्ति—जाओ, और कर दिखाओ।

(दोनों का दो तरफ से जाना)
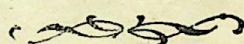
दृश्य तीसरा।

स्थान-सुदामा की कुटी।

(सुदामा का ध्यान लगाकर माला जपते और पास ही सुशीला अपने बच्चों को भूखे सो जाने के दुःख से दुखित दिखाई देती है)

गायन।

सुशीला-दुखिया अभागिनी को क्यों आपने विसारा।
क्या जन्म भर न होगा दुख दूर ये हमारा॥
विनती यही है भगवन् बच्चों के प्राण लो।
गर दे दिया है इनको तो कुछ करो सहारा॥

छुड़ा दो, भगवन्! अब इस दुःख से मुझे छुड़ा दो। या तो इन सुकुमार बच्चों को पेट भर अन्न और वस्त्र दो, नहीं तो मुझे इस पृथ्वी पर से उठा लो। जिसमें उन भूख से तड़पते हुए बालकों के

दुःख को अपनी आँखों से न देख सकूँ।

सात दिन से घर में मेरे अन्न इक आया नहीं।
पाँच दिन बीते हैं, हा! आगी भी सुलगाया नहीं॥

सुदामा—हाय, भगवन् क्या किया है पाप ऐसा घोरतम।
जो नहीं मिलता है बच्चों को भी दाना एकदम॥

सुशीला—(झुँझला कर) रहने दो, तुम्हें बच्चों की क्या पड़ी है? दिन रात बैठकर परमात्मा की रट लगाया करो, इन भूख से तड़पते हुए बच्चों के लिये कभी कहीं न जाया करो।

सुदामा—(उठकर) सुशीले! मेरी आत्मा बहुत दुखी है, इसे और न दुखा। ऐसे कर्णकटु शब्द न सुना।

कुछ न सिद्धि होयगी, हा! इस बुरे व्यवहार से।
हाथ फैलाकर के माँगो, तुम उस करतार से॥

सुशीला—परन्तु घर में बैठ कर इस प्रकार माँगने से परमात्मा देने नहीं आता है, जो प्राप्त करनेके लिये उद्योग करता है वही पाता है। मैं यह जानती हूँ, कि आज पाँच दिन से आपने अन्न का दर्शन तक नहीं किया है। शरीर निर्बल हो जाने से चलना फिरना कठिन हो गया है। परन्तु, इन बच्चों की ममता नहीं मानती है। इनकी भूख से तड़पती हुई आत्मा मेरा कलेजा फाड़े डालती है। नाथ, अपने लिए मत जाओ, मेरे लिए मत जाओ, परन्तु इन भूख से बिलबिलाते हुए अज्ञान बालकों के लिए जाओ। किसी धर्मात्मा के द्वार से कुछ भिक्षा माँग कर ले आओ।

पड़े हैं नींद में जब तक मैं तबतक से बनाऊँगी।
उठेंगे रो के माँगेंगे मैं तब इनको खिलाऊँगी॥

सुदामा—ठीक कहती है। परन्तु सुशीले......

कहाँ जाऊँ कहूँ किससे कदम आगे न बढ़ता है।
दुखी ब्राह्मण धनी दाता के अपमानों से डरता है॥
मुसीबत साथ जाती है जो भिक्षा को मैं जाता हूँ।
भीख तो क्या? मैं दरवाजेसे धक्केखाके आता हूँ॥

सुशीला—नाथ, हमारे दिनही खराब हैं। परन्तु इन बालकोंका दुःख देखकर सहन नहीं होता। आज पाँच दिन से ये बच्चे निराहार सो जाते हैं। जागते हैं तो रो रो कर मेरी आत्मा को दुखाते हैं।

जो मुझ पर आके बीतेगा, मैं सह लूँगी सभी दुखड़ा।

बिलखते बालकों को तुम, कहीं से लाके दो टुकड़ा॥

सुदामा—भीख भी मिलती नहीं है माँगने से इस घड़ी।
दाताके दरवाजे पै जा कोशिश हजारों ही करी॥

सुशीला—(झुँझलाकर) तो फिर दिन रात आप घर में ही बैठे रहो, पेट के लिए कोई उद्योग न करो।

चूँड़ियाँ चूनर पहन घरकी बहू बन जाइये।
आप पुरषों की तरह मत काम करने जाइये॥

सुदामा—क्या करूँ पुरुषत्व जब की भाग्य में लिखा नहीं।
भाग्य रेखा दे मिटा कोई भो ऐसा है नहीं।

सुशोला व्यर्थ की चिन्ता न कर। ये बच्चे तेरे ही बच्चे नहीं हैं, मेरे भी हैं। इनको मोहब्बत तुझे ही नहीं मुझे भी है। पर क्या करूँ? दुर्दैव मेरा साथ नहीं छोड़ता है, मेरी सारी आशाओं को तिनके की तरह तोड़ देता है। फिर भी मैं तेरे कहने से एक बार जाता हूँ और अपनी बिगड़ी हुई तकदीर को आजमाता हूँ।

(सुदामा का जाना)

सुशीला-(रोती हुई) हाय! भगवान! यह किस जन्मके किए हुए पापों का फल मिल रहा है! इस तड़पती हुई धूम में पाँच दिन के निराहार स्वामी को भेज कर मेरा हृदय फटा जा रहा है।

क्षुधित बच्चों के ही कारण मैं स्वामी को सताती हूँ।
खरी खोटी न कहने योग्य बातों को सुनाती हूँ॥

देखने वाले तो समझते होंगे कि सुशीला एक कर्कसा नारी है, पर मेरे हृदय के अन्दर की अगाध पति-भक्ति को कोई भी नहीं जानता। समय मेरा बुरा है चाहे जो भी कराले, नहीं तो मैं अपने पति-देव के कष्टों को देख कर विकल हो जाती हूँ। क्या इस समय उन्हें भेजकर मैं सुखी हूँ? नहीं, नहीं, मेरा हृदय फट रहा है। मेरे हृदय को दुर्दशा को भगवान् ही जान रहा है।

बिन पानी के मछली की तरह दिल यह उछलता है।
कटे घाओं पर जैसे लेके कोई नोन मलता है॥
उधर पैरों में छाले हों, इधर हो घाव दिल अन्दर।
उधर जो आह करदें तो, इधर नहिं प्राण तन अन्दर॥

(पड़ौसन का प्रवेश)

पड़ौसन—क्यों मिश्रानी जी किस सोच में पड़ी हो?

सुशीला-बहन जी, और तो कुछ नहीं केवल इन बच्चों के पेट की चिन्ता हो रही है।

पड़ौसन-मिश्रानी जी, यह दिन भी बीत जायँगे सब दिन एकसाँ नहीं रहते। दुःख न करो, लो यह बायन है इसे ले लो।

सुशीला-अहोभाग्य! बहन जी, आज कौन सा मंगल काम किया है जिसकी भाजी देने आई हो?

पड़ौसन-मेरी बहू को बेटा हुआ है, उसकी कल छट्ठी पूजी गई थी।

सुशीला-तो चिरंजीव रहे, परमात्मा करे तुम्हारी ऐसी बहू बूढ़ी सोहागन हो मुझ दुखिया पर जो तुम्हारी ऐसी दया है उसका बदला मैं नहीं चुका सकती हूँ।

पड़ौसन-मिश्रानी जी, मेरे लिये तो तुम्हारा आशीर्वाद ही सब कुछ है। लाओ कोई थाली लाओ, जिसमें यह भाजी धर दूँ।

सुशीला-थाली!

रात अँधेली आ गई उजाली कहाँ से हो।
किस्मत में है लिखा नहीं थाली कहाँ से हो॥

(अपनी धोती का पल्ला फैलाकर)

लाओ इसी में दे दो।

पड़ौसन—(धोती को देखकर) मिश्रानी जी, यह धोती भी तो तुम्हारी फटी है। सौगात लेने के लिये जगह भी तो नहीं है?

सुशीला-बहन जी, यह जो कुछ भी है मैं उसी के योग्य हूँ।

न पूछो हाल धोती का यह दुखियों का नमूना है।
करोगी गौर हालत पर तो दुःख इससे भी दूना है॥
करूँ तारीफ क्या इसकी मुझे हर तौर भाती है।
फटी मैली पुरानी भी मेरी इज्जत बचाती है॥

पड़ौसन-ठीक है! लेकिन जरा सी लेतीं!

सुशीला—क्यों कर सी लेतीं, सुई भी नहीं है?

पड़ौसन-माँग ली होती।

सुशीला-माँगने गई थी, लेकिन मेरी पड़ौसन ने मुझसे जो कुछ कहा, उसको सुनकर मैं अपना सा मुँह लेकर चली आई।

पड़ौसन-क्या कहा?

सुशीला-कहा उसने मुझे जो कुछ, न मैं उसको हूँ कह सकती।
बुराई है बताने में, मैं दिल पर ही हूँ सह सकती॥

पड़ौसन-भला कुछ भी तो कहो।

सुशीला-करोगी पूछ कर क्या तुम, झिड़ककर जोकि कह डाला।
दुखी तो था हि दिल मेरा, उसे उसने कुचल डाला॥

पड़ौसन-मुहजली बड़ी निर्दयी है, अगर दे देती तो क्या सूई घिस जाती?

जियेगी क्या अमर होकर जो इतनी निर्दयी वो है।
जलेगी क्या सुई लेकर जो बातें यों कही वो है॥

लो तुम मेरी ओढ़नी लेकर ओढ़ लो, घर तो पास ही है मैं एक धोती से ही चली जाऊँगी।

सुशीला-बहन जी! तुम्हारा इतना कह देना ही मेरे लिये बहुत है। परमात्मा तुम्हें सदा सुखी रखे। इस ओढ़नीको तुम्हीं ओढ़े रहो।

पड़ौसन-नहीं, नहीं मिश्रानीजी, कोई हर्ज नहीं। इसे तुम लेलो।

सुशीला-तुम जो कुछ भी कहती हो, वह मेरी दुखी हालत को देख कर कहती हो लेकिन मैं इस ओढ़नी को लेने से लाचार हूं, कारण कि मेरा जन्म ऐसे कुल में हुआ है, कि किसी का जूठा भोजन और उतारा हुआ वस्त्र...

पड़ौसन-ठीक है मिश्रानी जी! मैं गलती करती थी, तुम मुझे क्षमा करना। यह ओढ़नी तुम्हारे काम की नहीं है। अच्छा तुम एक काम करना। किसी दिन मिस्सर जी को मेरे घर भेज देना मैं बैजू के बाप से कह कर नई धोती दिलवा दूँगी।

सुशीला--अच्छा, बहनजी! परमात्मा तुम्हारा भला करे। मैं कह दूँगी।

पड़ौसन-हाँ याद करके जरूर से भेज देना। (प्रस्थान)

सुशीला-हाय, भगवान! मेरी कैसी दुर्दशा है।

(लड़कों का उठकर रोना)

राम०-माँ अब तो मारे भूखके प्राण निकल जायगा।

सुशीला—अरे मेरे लाल! मैं सदके हो जाऊँ। लो तुम्हारे ऊपर आज उस निर्दयी परमात्मा ने दयाकर यह सौगात भेज दी है। तुम दोनों भाई इसे बाँट कर खाओ।

राम०—क्या निर्दयी को भी दया आ जाती है?

सुशीला—हाँ! कभी कभी आ जाया करती है।

राम०—अच्छा हाथ धोने के लिये पानी दे।

सुशीला—घर में तो नहीं है, जाती हूँ कुएँ से अभी खींचकर लाती हूँ।

(सुशीला का जाना दरिद्र का कंगले के भेष में आना)

दरिद्र—दाता की जय जयकार हो।

राम०—कोई भिक्षुक जान पड़ता है।

दरिद्र—तीन दिन के भूखे की खबर लो माई बाप।

राम०—भूखा है?

दरिद्र—एक टुकड़ा इस गरीब को भी दो बाबा।

राम०—बाबा जी, तुमको भूख लगी है?

दरिद्र—दाता! आज तीन दिन से एक अन्न का दाना मुँह में नहीं गया है।

रा०-(स्वयम्) यह तो तीन ही दिन का भूखा है और मैं तो पाँच दिन से निर्जल हूँ। लेकिन मैं अभी जवान हूँ दो चार दिन और भी भूखा रह सकता हूँ और यह बुड्ढा अब एक दिन भी भूखा रहा तो निश्चय ही मर जायगा। इसलिये अपना हिस्सा इसे दे दूँ (अपना भोजन उसे देकर) अच्छा तो बाबाजी मेरे पास अन्न तो है नहीं यह थोड़े से फल हैं इसे आप ले जाइये किसी कूँए पर बैठकर खा लीजियेगा।

दरिद्र-भइया! तुम सदा सुखी रहो। परमात्मा तुम्हारा भला करे।

(एक ओर से दरिद्र का जाना दूसरी ओर से सुशीला का जल लेकर आना)

सुशीला—लो मेरे लाल! मैं जल ले आई। हाथ धोलो।

राम०—अब हाथ धोकर क्या करूँगा?

सुशीला—क्यों?

राम०—खाने को तो है ही नहीं।

सुशीला—जो मैं दे गई थी, वह क्या हुआ?

राम०—वह तो एक बूढ़े भिक्षुक को दे दिया।

सुशीला—भिक्षुक को दे दिया!......कुछ तो अपने लिये रख लिया होता!

राम०—माता जी! उसकी दुःखी हालत को देखकर मुझे दया आ गई। वह बड़ा ही भूखा था अगर मैं सब भोजन न दे देता तो वह भूखा रह जाता।

सुशीला-अरे मेरे लाल मैं तुझ पर बलिहार ! तू सच्चा है ब्राह्मण कुमार ।

जन्म है जिस वंश में उस वंश का व्यवहार यही ।
छठा लक्षण है कहैं वेद औ करतार यही ॥

आ मेरी तपस्या की मूर्ति, मेरे पूर्वजों की सुकीर्ति आ । तुझे कलेजे से लगा लूँ ।

दे दिया भिक्षुक को है तो और भी मिल जायगा ।
जिसने दिया पहले तुझे वह और भी भेजवायगा ॥

(सामने से भक्ति के साथ धर्म का सिर पर गठरी लेकर आना)

भक्ति सुदामा जी का घर यहीं है क्या ?

सुशीला-हां . घर तो यही है, परन्तु इस समय घर में हैं नहीं । जो काम हो सो कह दो आने पर कह दूँगी ।

भक्ति मुझे उनकी जरूरत नहीं है । यह सीधा सामान आया है इसे कहीं रखा लो ।

सुशीला किस दयालु का भेजा है ?

भक्ति-सुदामा जी ने एक सेठके घर से प्राप्त कर मेरे साथ भेजवाया है और कहा है, कि इसमें बच्चों के खाने योग्य जो २ पदार्थ हैं उनको पहले निकाल कर बालकों को दे दें, फिर आप रसोई बनाने का प्रबन्ध करें तब तक से मैं भी आता हूँ ।

सुशीला-अहो भाग्य ! आज सात दिन के बाद अन्न देव के दर्शन तो हुए । रख दो भइया ! यहीं पर रख दो ।

(धर्म का गठरी रखकर भक्ति के साथ जाना, सुशीला का गठरी खोलना, लड़कों का कच्चा अन्न मुट्ठी भर २ कर चबाना)

दृश्य चौथा ।

स्थान-सेठ लक्ष्मीचन्द का घर ।

(लक्ष्मीचन्द की स्त्री दयावती का प्रवेश)

गायन ।

नारी को और न दूजी गति है ।

नारी का पति ही जीवन है, पतिही तन और पति ही मन ।
पति ही आभूषण और धन है, पति ही सब सम्पति है ॥

ज्ञान भी पति है, धर्म भी पति है।
मान भी पति है, परमेश्वर भी पति है॥ नारी को०।

मेरे स्वामी भी कैसे कंजूस और निर्दयी हैं कि जिसकी उपमा संसार भर में नहीं मिलेगी। रात दिन घर में झगड़ा हो ठना रहता है कितना ही क्यों न कहो परन्तु वे एक भी नहीं सुनते। बस, यही कहा करते हैं, कि चाहे जिस प्रकार से भी हो बिना खर्च के ही गृहस्थी का सब काम चलाओ, भूखे मरो, नंगे रहो पर मेरे पैसे को हाथ न लगाओ। भला संसार में कोई भी बिना खर्च के गृहस्थी का कुल काम चला सकता है? नारायण, नारायण मेरे लड़के एक एक पैसे के लिये दिन रात तरसा करते हैं। उनके दिल में जरा भी दया नहीं आती। पड़ोसियों के लड़की लड़के अपने माँ बाप से पैसे ले लेकर खर्चा खाया करते हैं और मेरे लड़के उनका मुँह ताका करते हैं। ऐसी हालत को देख देख कर मेरे दिल में ऐसा दुःख होता है, कि जहर खाकर अपनी जान दे दूँ। (विट्ठलदास का प्रवेश)

बिट्ठल—माताजी पाठशाला जाने का समय हो गया, चलकर भोजन दे दो।

दयावती—समय तो अवश्य हो गया है, परन्तु तुम्हारे पिताजी तो अभी आये ही नहीं ठाकुर जी को भोग कौन लगायेगा।

बिट्ठल—तो क्या आज मैं भूखा ही पाठशाला चला जाऊँ?

दयावती—नहीं, बेटा! भूखे क्यों जाओगे। जरा और ठहर जाओ, तुम्हारे पिता जी आते ही होंगे।

बिट्ठल—मैं ठहर नहीं सकता। देर हो जाने से मैं पाठशाला में मार खाऊँगा इसलिये मैं भूखा ही चला जाऊँगा।

दयावती—अच्छा चलो! तुम्हीं भोग लगा दो। मैं तुमको रसोई जिमा दूँगी यदि तुम्हारे पिता रुष्ट होंगे तो मैं सह लूँगी।

(दोनों का प्रस्थान, दूसरी ओर से सेठ लक्ष्मीचन्दजी का प्रवेश)

गायन।

लक्ष्मी—पैसे की सारी दुनियाँ, पैसा ही जग का यार।
यह जिसके हाथ में जाता, उसको दुल्लह बतलाता।
जब निकल गया कर से तो, फिर फिरा करो लाचार॥

पैसा, पैसा, पैसा, दुनियाँ में सबसे बड़ा पैसा। ब्राह्मण पढ़ता

हैं, किस लिये ? पैसे के लिये। क्षत्री लड़ाई में मरता है, किस लिये ? पैसे के लिये। बनियाँ दिवाला मारता है, किस लिये पैसे के लिये। जूठा शूद्र खाता है किस लिये ? पैसे के लिये। रंडी कमर हिलाती है किस लिये ? पैसे के लिये। ये नाटक वाले मर्द से औरत बन जाते हैं, किस लिये ? पैसे के लिये। याने जहाँ तक दुनियाँ में देखा जाता है वहाँ तक पैसाही सार दिखलाई देता है। बाप भी पैसे के माँ भी पैसे की। भाई भी पैसे के, बहन भी पैसे की। ससुर भी पैसे के, सास भी पैसे की। साले भी पैसे के, साली भी पैसे की। लड़के भी पैसे के, जोरू भी पैसे की। कहाँ तक से कहूँ सारी दुनियाँ ही पैसे की।

पैसा है जिसके पास वह दुनियाँ में लाल है।
पैसा रहा न पास तो चर्खे की माल है॥

बन्दे का भी यही सिद्धान्त है, कि चाहे चमड़ी जाय तो भले ही चली जाय, पर दमड़ी न जाय। दुनियाँ के लोग न जाने किस तरह अपने पैसे को बेदर्द होकर खर्च डाला करते हैं। मुझे तो कभी एक कोड़ी भी गाँठ से निकाल कर खर्चनी पड़ जाती है तो मेरी आँखें ही उलटने लग जाती है। किसी को बेदर्द होकर पैसा खर्च करते देखता हूँ तो सात सात दिन तक बीमार पड़ जाया करता हूँ। बड़ा दुःख उठाकर महीनों भूखा रह कर इस समय मैंने तीन लाख रुपया इकट्ठा किया है उस बटोरे हुए धन में से यदि एक पाई भी कम हो जाय तो मेरी जान ही निकल जाय। अपने बटोरे हुए धन को देख देख कर मैं निहाल हो जाया करता हूँ। (टहलकर) अगर मुझे कोई दुःख है तो सिर्फ इस बात का कि मेरी स्त्री और लड़कों ने मिल कर मेरी नाकों में दम कर डाला है। मैं लाख सिर पीटता हूँ हजार समझाता हूँ, कि तुम लोग इस बेईमान दुनियां में किसी का भी विश्वास न करो, किसी को भी एक पैसा न दो लेकिन वे मानते ही नहीं। मैं तो अपनी जोरू का भी विश्वास नहीं करता। सारे संसार भर को चोर और दगाबाज समझता हूँ पर इन लड़कों से हार जाता हूँ। लड़के तो लड़के ही ठहरे पर वह लड़कोंकी माली तो और भी आग में घी का काम करती है। जो चाहती है उठा कर दे देती है। मरे हुए आदमियों का नाम लेकर ब्राह्मणों को हलुआ पूरी खिला दिया करती है। महीने की पूर्णमासी को सत्यनारायण क

कथा सुना करती है। हराम का माल खाने के लिये इन ब्राह्मणों ने ढङ्ग फैला दिया है। परमात्मा इन ब्राह्मणों को संसार में काहे के लिये पैदा करता है? अगर मेरी पहुँच परमात्मा तक होती तो उनको समझा बुझा कर इन धर्म के ठेकेदार ब्राह्मणों का पैदा होना ही बन्द करा देता। (बिट्ठलदास और रामू का आना)

बिट्ठल--बाबूजी!

लक्ष्मी०--(चिढ़ कर) बेटा जी!

बिट्ठल--पाठशाला के गुरु जी ने कहा है, कि महीना पूर्णमासी को हो गया।

लक्ष्मी०--तो मैं क्या करूँ?

रामू--रुपया दीजिये।

लक्ष्मी०--किस बात का?

बिट्ठल--पढ़ाई का।

लक्ष्मी०--क्या उनका मेरे यहाँ कुछ जमा है जो हर महीने व्याज दिया करू?

रामू--अजी, वे हम लोगोंको रोज चार घण्टे पढ़ाया करते हैं न।

लक्ष्मी०--पढ़ना, पढ़ाना तो ब्राह्मणों का काम ही है उसमें रुपये देने की क्या जरूरत?

बिट्ठल--बाबूजी! अगर पढ़ने वाले विद्यार्थी रुपये देकर मदद न करेंगे तो पाठशाला का खर्च कैसे चलेगा?

लक्ष्मी०--अरे मूर्खों! पाठशालाका खर्चही क्या है? सेठ दुलोचन्द ने मकान दे ही दिया है। पटिया, पोथी; लड़के अपने घर से ले ही जाते हैं?

रामू--और अध्यापकजी जो पढ़ाते हैं?

लक्ष्मी०--एक बार कह दिया, कि यह तो उनका काम ही है।

बिट्ठल--अजी काम तो है, पर खाने और पहरने को तो चाहिये।

लक्ष्मी०--उनके खाने और पहिरने का मैं जिम्मेदार हूँ?

बिट्ठल--जी नहीं।

लक्ष्मी०--तब?

बिट्ठल--आप हम लोगों की पढ़ाई का रुपया हर महीने दे दिया करिये।

लक्ष्मी०--क्यों दे दिया करिये ?

रामू०--क्योंकि हम लोग उनसे पढ़ने जाया करते हैं।

लक्ष्मी०--तो अब तुम लोग पढ़ना बन्द कर दो, मैं मुफ्त का पैसा नहीं दे सकता। (दयावती का प्रवेश)

दयावती-क्यों बन्द कर दो ? क्या लड़के मूर्ख रहेंगे ?

लक्ष्मी०-(स्वयम्) आ गई ! लड़कोंकी हिमायत करनेवाली लड़कों की नानी आ गई। (प्रकट) मूर्ख रहेंगे तो मैं क्या करूँ ? हर महीने एक रुपया पढ़ाई का कहाँ से दूँ ?

दयावती--तुम तो हर बात में इसी तरह कह दिया करते हो, जब कपड़े सिलवाने के लिये कहा तो इधर उधर करके टाल दिया, टोपी लाने को कहा तो कुछ और ही बहाना कर दिया। भला इस तरह कै दिन काम चलेगा ?

लक्ष्मी०-चले या न चले, इसको मैं क्या करूँ ?

दयावती-तुम न करोगे तो और कौन करेगा ?

लक्ष्मी०-जो तेरे हिमायती होंगे।

दयावती-मेरे हिमायती तो तुम हो, और दूसरा कौन मेरी हिमायत करने आयेगा ?

लक्ष्मी०-तेरे भाई, बाप, चाचा, काका नाना जो तेरे होंगे वो आयेंगे।

दयावती-भला, वे क्यों आने लगे ? लड़के तो तुमने जन्माये, वे खरचा क्यों चलाने लगे ?

लक्ष्मी०-अरी लड़कों की नानी ! मैंने क्यों जन्माये ? इनको जना तो तूने है, और जन्माया तेरे बाप ने है।

दयावती-बस चुप रहो, ज्यादा न बढ़ो, जबान को सँभाल कर बोलो। ऐसा कहते हुए लज्जा भी नहीं आती।

लक्ष्मी०-इसमें बात ही कौनसी लज्जा की है ? अगर तुम्हारे बाप मेरे साथ तुम्हारा ब्याह करके तुमको मेरे घर न भेज देते तो यह लड़के क्यों पैदा होते ? इस लिये इनके जन्माने का अपराध तुम्हारे पिता ही पर है।

दयावती-(झुनककर) देखोजी, अब तक तो मैं तुम्हारी ऊटपटाङ्ग बातों को सहती चली गई, लेकिन अब एक भी न सहूँगी, अगर तुम एक कहोगे तो मैं हजार कहूँगी।

लक्ष्मी०-आखिर में इसका परिणाम क्या होगा ?

दयावती–मेरा और तुम्हारा झगड़ा।

लक्ष्मी०–तो मैं इस झगड़े को दूरसे ही प्रणाम करता हूँ और अभी तुम लोगों के पास से चलता फिरता नजर आता हूँ।

(लक्ष्मीचन्द का जाना)

बिट्ठलदास-माता जी इस कंजूस पिता के साथ हम लोगों का निर्वाह किस प्रकार से हो सकेगा?

दयावती (बिट्ठल और राम के सिर पर हाथ फेरती हुई) मेरे प्यारे बच्चो न घबराओ, धीरज रक्खो। परमात्मा सब अच्छा ही करेगा।

(बाहर से सुदामा के भिक्षा माँगने की आवाज आती है)

सुदामा-(बाहर से) ऐ धनी सेठ साहुकारो, इस गरीब ब्राह्मण की भी खबर लो।

बिट्ठल—(आवाज सुन कर माता से) माता जी! जान पड़ता है कि द्वार पर कोई भिक्षुक आवाज लगा रहा है।

दयावती—हाँ मुझे भी ऐसा ही मालूम हो रहा है।

बिट्ठल—तो क्या जाकर बुला लाऊँ?

दयावती बुला तो लाओगे, लेकिन तुम्हारे बाप जी आकर कहीं देख पावेंगे तो तुम्हारे साथ साथ मेरी भी दुर्दशा कर डालेंगे।

बिट्ठल—(गिड़गिड़ा कर) नहीं माता जी! एक बार मेरे कहने से बुलवा लीजिये मैं आप के हाथ जोड़ता हूँ।

(फिर बाहर से आवाज आती है)

सुदामा-(बाहर से) ऐ ईश्वर के प्यारो, इस असहाय भूखे ब्राह्मण को सुधि लो।

बिट्ठल—माता जी! मैं जाता हूँ और बुला लाता हूँ।

दयावती-अच्छा, नहीं मानते हो तो जाओ और बुलाकर ले आओ।

(बिट्ठलदास का दौड़ते हुए जाना)

रामू-(खुश हो ताली बजा उछलते हुए)अम्मा! भय्या साधूको बुलाने गया है, तू जाकर घर में से साधू को देने के लिये सीधा ले आ और मैं यहीं खड़ा हूँ जब वह आयेगा तो मैं उससे भजन गवाकर सुनूँगा।

(बिट्ठल के साथ सुदामा का प्रवेश)

सुदामा-बेटा तुम जुग जुग जीओ! परमात्मा तुमको आनन्द से रक्खे।

बिट्ठल—तो क्या आप कई दिनों से भूखे हैं?

सुदामा मैं ही नहीं, मेरे साथ दो बच्चे और एक स्त्री पाँच दिन से निराहार पड़े हुए हैं।

बिट्ठल—नारायण, नारायण, आइये आप यहाँ बैठ जाइये मैं अभी जाकर सब सामान ला देता हूँ।

सुदामा—जीओ! भगवान् के प्यारे बच्चे, तुम संसार में सदा सुख भोग करो।

रामू—बाबाजी! कुछ भजन गाइये।

सुदामा—दम नहीं है बच्चा!

रामू—गाओगे नहीं तो हम सीधा भी नहीं देंगे।

सुदामा-धन्य हो! तुम भजन सुनने से बड़ा प्रेम रखते हो, अच्छा मैं तुमको भजन सुनाता हूँ।

रामू-हाँ सुनाओ।

गायन।

सुदामा-धन्य प्रभू तेरी माया।
जाके हाथ रहे धन दौलत, वोही जग में आया॥
बिन धन जो धावे जग अन्दर, धिक् धिक् वाकी काया।
माँगत फिरत द्वार द्वार पर, लो जी कोउ न सुनाया॥

दयावती-साधु जी! आप यहीं बैठें मैं जाकर सीधा भेज देती हूँ।

सुदामा-बहुत अच्छा, मइया!

दयावती-(लड़कों से) आओ, तुम लोग मेरे साथ चलो। मैं सीधा देता हूँ, तुम लाकर बाबाजी को दे देन।

बिट्ठल-हाँ, हाँ, चलो।

(सबका जाना सुदामा का बैठ कर भजन करना)

गायन।

सुदामा-भजु मन गोविन्द नाम, और नहीं कछु आवे काम।
कोमल केश ललित घुँघरारे, रतनारे नैना मतवारे॥
मोर मुकुट मणि कुण्डल धारे, शोभित सुन्दर श्याम।
पीत वसन कछनी कटि सोहै, उर बन माल भक्त मन मोहै।
मृदु मुसकान रूप चख जो हैं, चरण शान्ति के धाम॥

(लक्ष्मीचन्द का आना, सुदामा को देख कर)

लक्ष्मी०-हैं! यह कौन भँड़रिया बैठा है? बस, बस, समझ गया!

इसको भी मेरी स्त्री ने ही बैठाया होगा। मेरे दरवाजे पर वही आकर बैठता है जो लेने की इच्छा रखता है। (प्रकट) अरे ओ पाखण्डी।

सुदामा-(चौंक कर) क्या है श्रीमान् जी!

लक्ष्मी०-तू यहाँ पर क्यों बैठा है।

सुदामा-भिक्षा के लिये।

लक्ष्मी०-भिक्षा के लिये? क्या तुम्हारे बाप ने यहाँ पर सदावर्त लगा दिया है? चलो चलो, यहाँ से जाकर किसी क्षेत्र में माँगो। यहाँ से कुछ न मिलेगा।

सुदामा-नारायण नारायण श्रीमान् जी! आप दीन दुखियों से इस तरह रुष्ट क्यों होते हैं?

लक्ष्मी० - रुष्ट न होऊँ तो क्या हलुआ पूरी खिलाऊँ? तुम्हारे ही ऐसे पोप ब्राह्मणों ने भिक्षा माँगने का व्यापार चला रक्खा है। चले जाओ, मेरे यहाँ तुम्हारा तार न लगेगी।

सुदामा—दाता ऐसा न कहिये।

अच्छे और बुरे दुनियाँ में एक समान नहीं होते।
आलिम होते नहीं सभी और सब अज्ञान नहीं होते॥
जाहिल होते नहीं सभी औ दाना सभी नहीं होते।
सूम ही होते नहीं सभी औ दाता सभी नहीं होते॥

लक्ष्मी०—बस, बस चुप होजा, बहुत ज्ञान न छाँट। अपना वेद पुराण जाकर किसी भक्तराजको सुना, यहाँसे चलता फिरता नजर आ।

सुदामा—अच्छा दाता, आप न दोगे तो क्या मेरा परमात्मा भी मुझे न देगा?

(सुदामा का उठ कर जाने चाहना, सामने से दयावती और बिट्ठलदास का पोटली बाँध कर सीधा लाना, बिट्ठलका दौड़ कर सीधेकी पोटली और गन्ने के टुकड़े सुदामा को देना, सुदामा का लेकर जाना, दयावती और बिट्ठल का चल देना लक्ष्मीचन्द का सिर पीटना)

लक्ष्मी०—हाय बापरे! मार डाला! अरे वह कङ्गला तो मेरे घर का सारा अन्न ही बटोर कर ले गया। मैं अभी दौड़ कर रास्ते में छेकता हूँ और सारा समान छीन लेता हूँ। फिर आकर इन लड़कों की भी खबर लेता हूँ। (दौड़ते हुए जाना)

दृश्य पाँचवाँ ।

स्थान—जङ्गली मार्ग ।

सुदामा—(गठरी आदि रख कर) पाया, लेकिन दस दर्वाजे पर धक्का खानेके बाद थोड़ा सा अन्न पाया । यदि विष्णु भगवान वामन अवतार में भिखारी ब्राह्मण का रूप न धारण करते तो यह ब्राह्मण सदा भीख का प्याला हाथ में लेकर न फिरते ।

जमाना हो गया ज्यादा रहे वामन न वह बाली ।
मगर विप्रों के पल्ले में रही बाकी यह कङ्गाली ॥
अजब किस्मत हमारी है करूँ इसका गिला किससे ।
दोआएँ देके जाता हूँ मगर फिरता सदा खाली ॥

(सीधे की पोटली को देख कर) पहले इस पोटली को घर पहुँचाऊँ फिर गन्ने की पोटलो को राजा न्यायपाल के दर्बार में लेकर जाऊँ । लेकिन कई दिनों से भूखा रहने और आज की कड़ी मेहनत करने के कारण शरीर बहुत थक गया है थोड़ा विश्राम कर घर को ओर चलूँगा ।

(सुदामा का पोटली सिर के नीचे रखकर सो जाना दरिद्र का आना)

दरिद्र—(सुदामा को देखकर) सो गये । आज तो बड़ा माल पा गये हैं । लेकिन......

हर घड़ी मैं साथ हूँ कहँ जावगे तुम भाग के ।
पकवान खाना चाहते हो खाने वाले साग के ॥
क्या करोगे जाके तुम इस वीर के आगे ।
कुछ न हिकमत चल सके तकदीर के आगे ॥

(सिर के नीचे से सीधे और गन्ने की पोटली निकाल लेता है उसकी जगह राख और पोरदार लकड़ियों की पोटली रख कर चल देता है, सुदामा जागते हैं)

सुदामा—हरे कृष्ण, हरे कृष्ण (सीधे की पोटली का कपड़ा बदला हुआ देख उसे खोलता है, देखते ही घबरा उठता है, सिर पीटता हुआ) कङ्गाली इसी का नाम है:—

सामान था खाने का बाँधा धूर वो सब हो गया ।
साबूत कपड़ा एक था वो भी यहाँ पर खो गया ॥

(ऊपर देख कर)सता लो, प्रभो ! इस दुखी सुदामा को जितना

जी चाहे सतालो, लेकिन तुम्हारा ध्यान जान रहते कभी न छोडूँगा।

लड़का तड़फता भूखों से गर एक भी मर जायगा।
है तेरा धन लौट कर फिर भी तेरे घर जायगा॥

अब घर जाने का इरादा न रहा, गन्नों की पोटली लेकर राजा न्यायपाल के यहाँ जाता हूँ। एक बार फिर भी अपनी तक़दीर को आज़माता हूँ।

खुशी मन से चला हूँ पोरियाँ लेकर मैं गन्ने को।
मगर तकदीर खोटी है न आशा काम बन्ने की॥

(प्रस्थना)
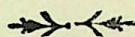
दृश्य-छठवाँ।

स्थान-राजा न्यायपाल का दर्बार।

(होलिकोत्सव)

गायन।

नृत्यकिएँ-खेलत हैं त्रिपुरारी, आजु होरी सुखकारी।
इत गण के समुदाय सुहावत, उत योगिन मनहारी॥
मिली दल युगल प्रेम रस साने, मारत हैं पिचकारी,
रंग भरि के बहुबारी॥ लै लै मुठिन गुलाल डालते,
प्रीति परम उर धारी। ललित कपोल ललकि मर्दत हैं,
अविर गंधयुत प्यारी, हरख हिय में अति भारी॥ खेलत०॥

(द्वारपाल का प्रवेश)

द्वारपाल-श्रीमान् महाराज के दर्बार में दो बनिये कुछ फरियाद करना चाहते हैं।

राजा-बुलाओ, राजा की शोभा इसी में है कि राज्य की प्रजा सुखी रहे-

अपनी प्रजा को पुत्रवत राजा अगर समझा करें।
क्यों न हो निर्भय मुकुट धर राज्य वो अपना करें॥

(सौभाग्यचन्द और धर्मपाल दोनों आते हैं)

मन्त्री-तुम दोनों में फरियादी कौन है?

दोनों बनियें-मैं हूँ।

मन्त्री-हयँ! क्या तुम दोनों फरियादी हो?

सौभाग्य०-इसका न्याय तो आप ही करें।

मन्त्री—तुम दोनों आदमी अपना अपना बयान अलग २ करो?

सौभा०-बहुत दिन हुए, धर्मपाल ने अपना एक मकान मेरे हाथ बेचा था, जिसको अब मैंने खोदवा कर नया बनवाना शुरू किया है।

मन्त्री-तो क्या धर्मपाल उसे बनवाने से रोकता है?

सौभाग्य०-नहीं सरकार! बस मकान की पिछली दीवार में से एक हण्डा अशर्फियों का निकला है।

मन्त्री—तो क्या धर्मपाल उस हण्डे को अपना बताता है?

सौभाग्य०-नहीं, वह हण्डा मैं इसे देना चाहता हूँ लेकिन यह लेने से इन्कार करता है।

धर्म०-भला आपही बताइये, जब कि मैंने अपना मकान इनके हाथ बेच दिया तब उसमें का छिपा हुआ धन मेरा क्योंकर हुआ?

राजा—भाई. तुम लोगों का झगड़ा बड़ा आनन्ददायी है जो मेरे राज्य की शोभा को बढ़ाता है।

भूखे न दौलत के प्रजागण धर्म पर दृढ़ हैं सभी।
पाप हैं यह मानते पर धन जो छू जाए कभी॥

तुम्हारा नाम क्या है?

सौभा०—सौभाग्यचन्द।

राजा०—और तुम्हारा?

धर्म०—धर्मपाल।

राजा०—अच्छा, तो भाई सौभाग्यचन्द! जब तुमने धर्मपालका मकान खरीद कर लिया तो उसमें का धन लेने से इनकार क्यों करते हो?

सौभा०—महाराज, मैंने मकान खरीदा है न कि उसमें का धन।

राजा—(धर्मपालसे) क्यों जी धर्मपाल! तुमने सौभाग्यचन्द के हाथ मकान ही बेचा था उसमें का छिपा हुआ धन तो बेचा नहीं था, फिर उसे लेने से इन्कार क्यों करते हो?

धर्म०—जब कि मैंने मकान बेचा उस वक्त इस धनकी किसी को भी खबर न थी। अब वह जमीन इनकी है इसलिये वह धन भी इन्हीं का है। अगर मेरा होता तो मकान बेचनेके पहलेही मुझे मिल जाता।

राजा—आहा !

हार लक्ष्मी की विजय है धर्म की इस राज में।
बन गई कलँगी रिआया है मेरे इस ताज में॥

तुम दोनों एक ही जाति के हो ?

सौभा०—जी हाँ, एक हो जाति के। मैंने तो अपनी बेटी की शादी भी इन्हीं के एक लड़के से ठीक की है।

राजा—बस, तो वह अशर्फियों वाला हण्डा तुम अपनी बेटी के दहेज में इनके बेटे को दे देना।

धर्मपाल०—धन्य है ! आपके न्याय को धन्य है।

सौभा०—कैसा सुन्दर न्याय किया है। महाराज आपकी सदा जय जयकार हो। (दोनों का जाना)

द्वारपाल—(प्रवेश कर) महाराज के द्वार पर एक ब्राह्मण खड़ा हुआ आशीर्वाद कह रहा है।

राजा—उसे भी ले आओ।

मन्त्री—श्रीमान् ने इन बनियोंका न्याय बहुत ही उत्तम किया।

राजा—ऐसा न करता तो क्या उनके धन को राजधन बतला कर छीन लेता ? (सुदामा का प्रवेश)

राजा—(खड़े होकर) ब्राह्मण देवता प्रणाम।

सुदामा—स्वस्त्यस्तुते कुशलमस्तु चिरायु रस्तु।
गो वाजि हस्ति धनधान्य समृद्धि रस्तु॥
ऐश्वर्यमस्तु कुशलोस्तु रिपुक्षयोस्तु।
सन्तान वृद्धि सहितात् हरि-भक्ति रस्तु॥

राजा—कहिये विप्रवर ! क्या आज्ञा है ?

गो विप्र की रक्षा ही करना धर्म क्षत्री वीर का।
कष्ट टारन के लिये भुजदण्ड है रणधीर का॥

सुदामा—वैद्य देवता, कुलगुरू, राजा, मित्र सुसाथ।
इनके नहिं गृह जाइये, कभी भी खाली हाथ॥

इस नियम के अनुसार यह भेंट है।

(गन्ने की पोटली खोल कर रखता है परन्तु लकड़ी के टुकड़े देखकर घबड़ा उठता है।)

मन्त्री—ब्राह्मण देवता ! यह राज भेंट है या लकड़ियों का ढेर।

सुदामा—(स्वयम्)

गन्ने की लकड़ी हो गई बिगड़ी हुई तकदीर से।
फिर मुसीबत क्यों कटे इसकी हुई तदबीर से॥

राजा—शास्त्रों के जानने वाले ब्राह्मण देवता! यह लकड़ियों की भेंट आपने किस शास्त्र के अनुसार दी है?

सुदामा-(स्वयम्) ऐ ब्राह्मणों की आराध्य देवि! ऐ ब्राह्मणों के कण्ठ और जिह्वा पर निवास करने वाली माता सरस्वती! इस दीन ब्राह्मण की सहायता करो।

राजा—बोलो, बोलो! ऐ ब्राह्मण देवता! उत्तर दो, क्या इन लकड़ियों की भेंट देकर राज दरबार का अपमान करते हो?

सुदामा—नहीं राजन् इस दीन सुदामा को उन व्यक्तियों में न समझो जो राज्य में रहकर भी राज दरबार से द्वेष रखते हैं!

राजा फिर इन लकड़ियों को दरबार में किस लिए लाये हो?

सुदामा—राजन्! पाण्डु पुत्र अर्जुन ने निशङ्क होकर खाण्डव बन को जलाया, भगवान शङ्कर ने कामदेवको भस्म किया, हनुमान ने रावण की लङ्का को फूँक दिया लेकिन इस दरिद्रता का आज तक किसी ने भी नाश न किया। इन लकड़ियों को मैं इसलिये लाया हूँ कि आज तू इसकी चिता बनाकर दरिद्रता को जला दे और मुझे उसके चंगुल से छुड़ा दे।

(राजा के सिंहासन पर भक्ति का दर्शन)

राजा—(खुश होकर) आहा—

कहावत है फतह होती हमेशः बुद्धिमानी से।
भभक कर जो लगी आगी बुझी विद्या के पानी से॥

मन्त्रीजी! इस शास्त्रज्ञाता ब्राह्मण को एक हजार अशर्फी खजाने से दिलवा दीजिये।

सुदामा-(स्वयं) क्या इतनी दौलत मुझी को देने के लिये कहा! नहीं नहीं किसी दूसरे के लिये कहा होगा।

राजा—ब्राह्मण देवता जाइये, खजाने से जाकर अपना पुरस्कार ले लीजिये।

सुदामा—क्या आपने मुझे पुरस्कार लेने की आज्ञा दी है?

राजा—हाँ तुमको।

सुदामा—तुम्हारा कल्याण हो। हमेशा इस दुनियाँ में फूलो फलो।

(सुदामा का डरते हुए जाना और फिर घूम २ कर पीछे की ओर देखना)

चोबदार—चलिये पण्डित जी महाराज! पुरस्कार मिलने की आज्ञा तो मिल चुकी अब घूम घूमकर क्या देखते हो?

सुदामा—दरिद्रता देवी को देख रहा हूँ। कहीं मेरे पीछे पीछे न आती हो; इसी से डर रहा हूँ।

चोबदार—आइये देर न करिये खजाना बन्द होने का समय हो गया है।

सुदामा—चलिये चलिये।

(डरता हुआ पीछे देखता जाता है)

दृश्य-सातवाँ।

स्थान—जङ्गल।

(राजा न्यायपाल पर क्रोध करते हुए दरिद्र का आना)

दरिद्र—समझ लूँगा, समझ लूँगा अब मैं इस मूर्ख भूपाल न्यायपाल से भी समझ लूँगा। भक्ति के बहकावे में आ गया। मूर्ख एक छोकरी से फन्दा खा गया। सुदामा को गहरी रकम दान में देकर परमात्मा के बनाये हुए नियम को तोड़ना चाहता है, भक्तिके चंगुल में फँस कर मुझसे दुश्मनी का नाता जोड़ना चाहता है। ओ मूर्ख—

आ गया भरें में तू भक्ता ने मतवाला किया।
देके दौलत नीचको अदने से हैं आला किया॥
भीख से क्या पूर्ण तूने भीख का प्याला किया।
सामने उस भक्ति के है मुँह मेरा काला किया॥
कौन सी है चीज तू ओ क्या वो तेरा दान है;
दे नहीं सकता मेरे सन्मुख उसे भगवान है॥

(भक्ति का प्रवेश)

भक्ति—भूल जा! भूल जा! अपने इस अभिमान को भूल जा एक औरत के सामने नीचा देख अपनी बहादुरी को भूल जा—

देखती हूँ कम नहीं अब तक भी तेरी शान है।
लाख फिटकारें हुईं फिर भी वही अभिमान है॥

शर्म कर मत सर उठा झुकजा इसी में मान है।
वर्ना ठोकर खायगा नहि फिर तेरा कल्यान है॥

दरिद्र—ओ नादान छोकरी! उस बेवकूफ राजा न्यायपाल की नादानी पर इतना न इतरा। सुदामा की खराबी कराने के लिये मेरे दिल में आग न सुलगा। जरा सी कामयाबी हो जानेपर फूली नहीं समाती है, दुनियाँ भर की किस्मत की कुञ्जी तेरे हाथ में आ गई जो इतना इतराती है? अगर तुझे अपनी जीत पर घमण्ड है तो अब सुदामा की अशर्फियों की हिफाजत कर।

भक्ति—जब कि मेरे भक्त उसको हर तरह देने के लिये तैयार हैं तो फिर हिफाजत करने की क्या दरकार है?

दरिद्र—ओ भक्ति! भक्ति!! इस घमण्ड को छोड़ दे। यह अशर्फियाँ सुदामा के काम न आएँगी।

भक्ति—न सही! अगर यह चली जायगी। तो उसे और भी मिल जायँगी।

दरिद्र—अच्छा, मैं उसे भी देखूँगा। (जाना)

भक्ति—जा, जा, जो तेरा काम है उसे कर।

(भगवान कृष्ण का आना)

भक्ति—भगवान् प्रणाम!

कृष्ण—भक्तों की दृढ़ ध्वजा मजबूती से गहे रहो।

भक्ति—प्रभो! इस दरिद्र ने तो झटका मार मार कर मेरी जड़ को हिला दिया।

कृष्ण—उसके धक्कों से न घबराओ अपना काम किये जाओ, जो तुमको आदर के साथ अपने हृदय में बैठावे, तुम उसको मेरे धाम में पहुँचाती जाओ।

भक्ति—लेकिन सुदामा!

कृष्ण—देवी! इस झगड़े में न पड़ो, तुम तो केवल उसके हृदय में मजबूती के साथ बैठी रहो। जहाँ तक हो सके उसकी मदद करो सुदामा को सुखी करने का काम तुम्हारा नहीं किसी दूसरे का है।

भक्ति—लेकिन आप चाहें तो......

कृष्ण—ठीक है पर मैं ऐसा चाहने ही क्यों लगा।

सुखी करना तो क्या उसको न दाना एक मिल सकता।
न हो जब तक मेरी मर्जी न पत्ता एक हिल सकता॥

भक्ति—तो उस दीन पर आपकी मर्जी क्यों नहीं होती ?

(कृष्ण चने की माला निकाल कर)

कृष्ण—यह देखो ! सान्दीपन की पाठशाला में पढ़ते समय उसने अपने साथी के हिस्से के चने भी आप ही खाये थे।

उसी बदकाम के बदले मुसीबत आज पाता है।
करा फाका उसे माला तब एक दाना गिराता है॥
खतम जिस वक्त हो जायें चने माला के ये सारे।
तभी शीतल हो सुख देंगे उसे आगी के अङ्गारे॥
है कायम हद मुसीबत का गुजरता वह चला जाता।
रहा थोड़ा चना बाकी है वह भी अब गिरा जाता॥

भक्ति—लेकिन भगवान्! उसकी दशा देख कर मेरा हृदय फटने लग जाता है।

कृष्ण—ऐसा तो मुझे भी होता है।

भक्ति—अगर उसकी हालत पर आपको भी दया आती है तो क्यों नहीं आप उसकी तकलीफ दूर करते ?

कृष्ण—कोई रास्ता नहीं—

न पावे कर्म का बदला यह हर्गिज हो नहीं सकता।
मेरे खाते में एक दाना भी कमती हो नहीं सकता॥
है सच्चा यार, गुरु भाई, सुदामा भक्त भी मेरा।
मगर किस्मत के लिक्खे को मिटाना हो नहीं सकता॥

गायन।

करम गति टारे नाहिं टरी।

रामचन्द्र दशरथ के बेटा काँधे कमान धरी।
धनुष तोड़ि सीता को ब्याहो केकई गाज परी॥
मुनि वशिष्ट से पण्डित ज्ञानी शोधी लगन खरी।
सीता हरण मरण दशरथ को बन में विपत परी॥
त्रेता में रावण भयो राजा सोने की लङ्क जरी।
एक लाख पूत सवा लाख नाती लकड़ी न कोउ धरी॥
एक गऊ जो देत विप्र को सो सुर लोक तरी।
कोटि गऊ नित दान करे नृप गिरगिट योनि धरी॥

३

साधु सुदामा अति सन्तोषी बुद्धी भूक हरी।
सूर श्याम करनी सो भरनी खोटी होय कि खरी॥

दृश्य-आठवाँ।

स्थान-सुदामा की कुटी।

(सुशोला का सुदामा के आने की इन्तजारी करते दिखाई देना)

सुशीला-प्राणनाथ को गये बहुत देर हुई; अभी तक आये नहीं। देर होने से मेरा दिल घबरा रहा है। मैं भो कैसी पापिनी हूँ, पाँच दिन के भूखे स्वामि को जबरदस्ती ठेल कर भेजा। न जाने थक कर कहीं बैठ गये हों, चला न जाता हो। हे भगवान्! तुम उनकी रक्षा करना। (सुदामा का प्रवेश)

सुदामा-कृष्णाय वासुदेवाय गोविन्दाय नमो नमः।

सुशीला-(सुदामा को देखकर स्वयम्) अहोभाग्य! क्या प्राणनाथ आ गये! पर खाली हाथ!!

(सुदामा आतेही सोते हुए लड़कों की ओर देखता है फिर अपना माथा थाम कर वैठ जाता है)

सुदामा-सुशीले! क्या लड़कों ने कुछ खाया?

सुशीला-हाँ केवल लड़कों के ही खाने योग्य मिला, जो आपने भेजवाया।

सुदामा-मैंने भेजवाया? सुशीला! अब तेरे व्यङ्ग वचन मुझे अधिक दुःख देते हैं।

सुशीला—(ताज्जुब से) मैंने कौन सा व्यङ्ग शब्द कहा? मैं तो सत्य कह रही हूँ।

सुदामा-सत्य क्या कह रही है? मैंने तो कुछ भेजा ही नहीं।

सुशीला-लेकिन मुझे तो जिसने लाकर दिया उसने यही कहा कि तुम्हारे पति ने भेजा है।

सुदामा-अगर यह बात सच है तो परमात्माको धन्यवाद दो, यह परमात्मा का गुप्त चमत्कार है जो मेरे नाम से उसने अन्न भेजा है।

सुशीला-हैं यह कैसी है माया? क्या आपने कहीं भी कुछ न पाया?

सुदामा-पाया, लेकिन सिर्फ आँखों से देखने के लिये, खाने के लिये नहीं। एक दयावान बालक ने दस सेर अन्न और थोड़े से गन्ने के टुकड़े दिये। लेकिन बहुत थक जाने के कारण राह में मैं विश्राम करने लगा, दुर्दैव की कृपा से वह सारा अन्न गठरी में ही राख हो गया। गन्ने के टुकड़ों को लेकर राजा न्यायपाल के दर्बार में गया भाग्य ने उन गन्नों को भी लकड़ी बना दिया। माता सरस्वतीने कृपा की तो राजा ने खुश होकर एक हजार अशर्फियाँ दीं। राह में एक लड़का कुएँ में गिरा हुआ चिल्ला रहा था मैं उन अशर्फियों की गठरी को रखकर कुएँ से बालक को निकालने लगा इतने में उस गठरीको जमीन निगल गई।

सुशीला-हायरी कमनसीबी! क्या अब तक मुँह में एक दाना अन्न भी नहीं गया?

सुदामा-जब भाग्य में ही नहीं है तो जाता कहाँ से? परमात्मा तो हम पर रुष्ट हैं फिर मिलता कहाँ से?

सुशीला-कुछ नहीं, वह निर्दयी परमात्मा भी कुछ नहीं। तुम्हारा नेम, धर्म, पूजा, पाठ सब व्यर्थ है। संसार में अब अपना कोई नहीं। कोई उपाय करो। नहीं तो अब अन्न के बिना प्राण निकल जायँगे।

सुदामा-कौन सा उपाय करूँ? जो तू कहे मैं वही करनेके लिये तैयार हूँ।

सुशीला-अच्छा तो इस बार तुम तीनों लोक के मालिक लक्ष्मी नाथ के पास जाओ और उनसे ही कुछ माँग कर ले आओ।

वो हैं अथाह सागर एक बूँद से न कम हों।
भर देंगे घर हमारा जो दिल में कुछ रहम हो॥

सुदामा-(सहसा चौंककर) हाँ याद आया-श्रीकृष्णचन्द्र के साथ खेलना, खाना, पढ़ना याद आया। मैं तो एक दम भूल ही गया था। तू ठीक कह रही है। शायद उनका दर्शन होने से मेरा दरिद्र दूर हो जाय।

सुशीला-तो फिर उन्हीं के पास जाओ। वे तुम्हारे बाल सखा हैं तुम्हारी हालत को देख कर जरूर रहम करेंगे। तीनों लोक के भण्डारी हैं—अगर एक मुट्ठी उठा कर दे देंगे तो अपना उद्धार हो जायगा-सारे दुखों से निस्तार हो जायगा।

सुदामा—सुशीला ! तेरा कहना ठीक है—लेकिन मेरा दिल इस बात को मंजूर नहीं करता कि मैं उनसे जाकर कुछ माँगूँ ।

सुशीला-क्यों ? जब वे तीनों लोक को देने वाले हैं तो क्या तुमको न देंगे ? या तुमको देंगे तो उनके भण्डार में कुछ कमी आ जायगी ?

सुदामा—उनके भण्डार में कमी आए या न आए लेकिन मित्र के आगे हाथ फैला कर माँगने से मेरी इज्जत तो जरूर घट जायगी ।

सुशीला- आपकी बुद्धि में भ्रम है-इसीलिये इस बात का गम है। बर्ना इन्सान के आगे हाथ फैला कर भिक्षा माँगने में बुराई है न कि भगवान के आगे ।

जाओ स्वामीनाथ द्वारिका में भेंट करो यदुराई से ।
सारी हालत बातों ही में कह देना चतुराई से ॥
दीन दयालु भक्त हितकारी खाली कभी न फेरेंगे ।
भक्त उन्हें वश में कर लें यदि सच्चे दिल से टेरेंगे ॥

सुदामा—दिल में तूने ठान ली है भीख मँगवाने को आज ।
इसलिये है कह रही तू द्वारिका जाने को आज ॥

लेकिन इस बात की भी खबर है—
वैद्य, देवता, कुलगुरू, राजा, मित्र, सुसाथ ।
इनके गृह नहिं जाइये, कभी भी खाली हाथ ॥

सुशीला—वे तो तीनों लोक को देने वाले त्रिलोकीनाथ हैं उनको कोई क्या देगा ? फिर भी मैं अपनी ओर से इनके लिये भेंट अवश्य दूँगी । मेरी पड़ोसन बैजू की माँ आज थोड़े से चावल मंस के दे गई है वह अपनी अवस्था के अनुसार अच्छी भेंट होगी, उसे मैं बाँधे देती हूँ ।

सुदामा-और उसके साथ ही साथ मुझे भी । हाय !
कैसी कठिन समस्या आकर खड़ी है सन्मुख ।
मैं जाउँ या न जाऊँ दोनों में है मुझे दुख ॥

सुशीला—(चावल की पोटली बाँध कर) यह लो प्राणनाथ ! इस पोटली में तीन मुट्ठी चाँवल हैं, मेरी ओर से ब्रज के बिहारी को भेंट देना ।

(पोटली सुदामा को देती है इतने में सुदामा के दोनों लड़के आ जाते हैं)

रामशरन—माताजी ! क्या पिताजी खूब ढेर सा पैसा लाने जा रहे हैं ?

सुशीला—हाँ बेटा ! तेरी शुभ वाणी फलीभूत हो ।

रामशरन—तब तो पिताजी के सँग मैं भी चलूँगा !

लक्ष्मीशरन—और मैं भी चलूँगा !

सुदामा—नहीं मेरे प्यारे बच्चों ! मेरे साथ चलने में तुम लोग थक जाओगे, दोनों भाई मिलकर यहीं खेलो, मैं शीघ्र ही लौट आऊँगा ।

रामशरन-आओ भाई लक्ष्मीशरन, हम लोग माताजी के पास खेलें पिताजी को धन लेने के लिये जाने दो ।

सुदामा-सुशीला ! इन बच्चों को अकेले छोड़ कर कहीं भिक्षा के लिये न जाना और मेरे लिये व्याकुल होकर न घबराना । मार्ग में जङ्गली जानवरों से या भूख से दुखी होकर मैं जीवित न रहा तो मेरे वियोग में कोई अनर्थ न कर डालना, जब तक ये लड़के भीख माँग कर अपना पालन आप करने लायक न हो जायँ तब तक सब दुखों को अपनी छाती पर पत्थर रख कर सहन करना ।

सुशीला—मार दीजिये, स्वामीनाथ, इस समय इस ममता को मार कर अलग कर दीजिये ! यह उद्योग करने वालों की शत्रु है, कर्त्तव्य पथ की कंटक है, जाइये, पधारिये ।

सुदामा—जो इच्छा भगवान की ।

(दोनों लड़के दौड़ कर सुदामा से लपट जाते हैं सुदामा दोनों को उठा कर प्यार करता है)

रामशरन - पिताजी ! मैं तो आपको नहीं जाने दूँगा ।

लक्ष्मीशरन-और मैं भी नहीं जाने दूँगा ।

सुशीला—(दोनों को पकड़ कर) जाने दो बेटा ! पिता जी तुम्हारे लिये ढेर से पैसे लेने जा रहे हैं ।

(सुशीला और सुदामा दोनों ही रोने लग जाते हैं दोनों आफत में प्रेम भरी दृष्टि से देखते हुए पीछे हटते हैं और फिर गले से मिलते हैं । सुशीला अपने हाथों से अपनी आँखों को ढक लेती है, सुदामा आगे बढ़ते हैं ।)

टेबला ड्राप ।

——**——

अङ्क दूसरा।

दृश्य--पहला

स्थान—समुद्र किनारे का बन।

सुदामा-(प्रवेश कर)

गायन।

यदुवीर पर अगर ये जीवन निसार होता।
तो इस मनुष्य तनका कुछ मुझको प्यार होता॥
ऐ भाग्य! तूने मुझको नहिं पुष्प भी बनाया।
चरणों पै चढ़ते चढ़ते मैं गले का हार होता॥
बेकार लोग कह कर मुझको यह छेड़ते हैं।
तुझे नाथ मिल ही जाते यदि संस्कार होता॥

कहाँ जा रहा हूँ? किसलिये जा रहा हूँ? क्या इस जगह वह नहीं मौजूद है, जिसके लिये औरत के तानों से घबरा कर जङ्गलों में ठोकर खा रहा हूँ? मेरी किस्मत में दौलत मिलना तो नहीं लिखा है लेकिन श्रीश्याम मुरारी के दर्शन तो अवश्य होंगे। वो यादवपति अपनी पटरानियों के साथ मोती महल में सुख से विहार करते होंगे, उस जगह पर बड़े बड़े देवताओं की तो पहुँच हो ही नहीं सकती फिर मुझे कौन पूछने लगा?

दुनियाँ के वो हैं मालिक मैं हूँ गरीब कमतर।
हालत बुरी है मेरी पहचान होगी क्योंकर॥

क्या करूँ अब मैं लज्जा वश घर भी लौट कर नहीं जा सकता।

(सुदामा विचार करता हुआ बैठ कर ईश्वर का ध्यान करने लगता है—जङ्गल में घूमते हुए राक्षस उसके पास आकर गर्जना करते हैं)

१ ला राक्षस—क्या देखते हो, पकड़ लो और मार डालो।

२ रा राक्षस-ठीक है आज पेट भर भर कर ताजा मांस खाने में आयेगा।

३ राक्षस—बाद मुद्दत के आज इस जङ्गल में मनुष्य दिखलाई दिया है।

४ था राक्षस-आज भगवान् भूतनाथ की हम लोगों पर कृपा है।

१ ला राक्षस–भवानीपति ने खुश होकर ही आज हम लोगों को मनुष्य का आहार दिया है ।

(सबके सब गरजते हुए सुदामा के पास जाते हैं, सुदामा चौंक कर आँखें खोल देता है, राक्षसों को देख कर डरता हुआ खड़ा हो जाता है, राक्षस उस पर टूटना चाहते हैं इतने में चारो ओर से आग की लपटें पैदा होती हैं राक्षस चिल्लाते हुए भागते हैं)

सुदामा—धन्य हो ! बाँके विहारी, जन हितकारी । तुम धन्य हो !! ऐसी घोर विपत्ति से बचाना तुम्हारा ही काम है । आता हूँ, नाथ ! आपकी सेवा में आता हूँ, तुम्हारा कृपा से इतना मार्ग समाप्त कर चुका हूँ, अब थोड़ा सा और रह गया है, उसे भी आप पार कर ही दोगे । (चारो ओर देखकर) परन्तु इस भयानक समुद्र के पार किस तरह से जाऊँगा ? (सोच कर) अच्छा यहीं जङ्गल के फल मूल को खाकर आराम करूँ जब कोई दयावान् आएगा तो इस सिन्धु के भी पार पहुँचाएगा ।

गायन ।

तुम्हारे रूप का जलवा जरा सा हम भी देखेंगे ।
नहीं मिलते हो कैसे यह तमाशा हम भी देखेंगे ॥
मैं तुमको ढूँढ़ता फिरता मुझी से तुम छिपे फिरते ।
कहाँ तक दोगे हमको दम दिलासा हम भी देखेंगे ॥
तुम्हारे नाम पै सब छोड़ तुम पै मरते जीते हैं ।
नहीं कब तक है होती पूर्ण आशा हम भी देखेंगे ॥

(सामने से एक नाविक आता है समुद्र के किनारे जाकर बैठ जाता है ।)

सुदामा–(नाविक को देखकर स्वयम्) यह तो कोई नाविक ही जान पड़ता है । परमात्मा भी बड़ा ही कारसाज है । अब इसके पास जाकर पूछूँ । (पास जाकर प्रगट) भाई तुम कौन हो ?

नाविक—(आश्चर्य से देखता हुआ) अरे, तुम जीते ही जी यहाँ तक क्योंकर चले आये ?

सुदामा—भाई अगर तुम मेरे आने में सन्देह करते हो तो फिर तुम यहाँ किस तरह जीते रहते हो ?

नाविक—मुझे तो बड़े बड़े ऋषि मुनियों का आशीर्वाद मिला हुआ है। मैं केवट हूँ जितने ऋषि मुनि आते हैं उन सबको नौका पर बैठा कर उस पार द्वारिका में पहुँचा दिया करता हूँ और रात दिन इसी पानी में ही रहा करता हूँ।

सुदामा-धन्य हो! केवट! तुम्हारा संसार में जन्म लेना सार्थक है। मैं भी तुम्हारा दर्शन कर पापों से छूट गया। मैं भी उन्हीं श्रीकृष्ण-चन्द्र आनन्दकन्द का एक तुच्छ सेवक हूँ उनके दर्शन की अभिलाषा कर घर से चला हूँ और उन्हीं की दया से यहाँ तक आ गया हूँ। कृपा कर मुझे भी अपनी नौका द्वारा इस महासिन्धु के पार पहुँचा दो कि मैं भी उस पवित्र द्वारिकापुरी का दर्शन कर अपने जन्मको सुफल करूँ।

नाविक—(स्वयम) यह मनुष्य कुछ पागल सा जान पड़ता है भला इस कङ्गाल को द्वारिकापुरी में कौन पूछेगा (प्रगट) ब्राह्मण देवता! आप जहाँ से आये हैं वहीं लौट जाइये। क्यों अपने प्राण देने पर लगे हैं? वहाँ आपको कोई भी न पूछेगा।

सुदामा—न पूछेगा न सही, लेकिन अब मैं लौटकर नहीं जाऊँगा, बिना अपने मित्र का दर्शन किये घर लौट कर नहीं जाऊँगा। तुम मुझ पर दया करो। मुझे मेरे मित्र की नगरी में पहुँचा दो।

नाविक— हँसता हुआ स्वयम्) अवश्य पागल है (प्रकट) अजी ब्राह्मण देवता? तुम किसको अपना मित्र कह रहे हो?

सुदामा—उसी श्रीव्रज के विहारी को, मनमोहन मुरारी को, अपना मित्र कह रहा हूँ।

नाविक—क्या वे तुम्हारे मित्र हैं? परन्तु तुम्हारी सूरत तो उनके मित्र के ऐसी नहीं दीख पड़ती?

सुदामा-हाँ मेरे वे मित्र हैं—

कृष्णचन्द्र जग के रक्षक हैं तेरे भी और मेरे भी।
राजा रङ्क दोनों के ही हैं होते साँझ सबेरे भी॥
आवें धाय पास में पर कोई सच्चे दिल से टेरे भी।
भले बुरे दिन के होते हैं सब पर हेरे फेरे भी॥

नाविक--बस, बस, चुप हो जाओ, अब ऐसे शब्द मुँह से न निकालना। अगर कोई सुन पायेगा तो जीवित न छोड़ेगा। जिस

श्रीकृष्णचन्द्र के साथ मित्रता करने की सामर्थ इन्द्र को भी नहीं है, जिनके दरबार में बड़े २ देवता, ऋषि मुनि जाकर सिर झुकाते हैं, जिनके दर्शन की अभिलाषा से जङ्गलों में बैठ कर रात दिन ध्यान लगाते हैं और फिर भी नहीं पाते हैं। उस ज्योति स्वरूप के साथ तुम कङ्गाल की मित्रता किस तरह ?

सुदामा—जिस तरह कीचड़ से पङ्कज का कठिन सम्बन्ध है।
जिस तरह प्रेमी चकोरी का वो प्यारा चन्द है॥

नाविक—(स्वयम्) इस वेष में ये कोई छिपे हुए महात्मा जान पड़ते हैं। (प्रकट हाथ जोड़कर) महात्मन्! मेरे अपराधों को क्षमा कीजियेगा। अनजान में जो कुछ भी कहा हो उसपर ध्यान न दीजियेगा। आइये मेरी नाव पर बैठ जाइये. मैं आपको पार पहुंचाए देता हूँ। आप जैसे महात्माओं की सेवा करना ही मेरा कर्तव्य है। आइये मैं आपको द्वारिका पहुँचाये देता हूँ।

सुदामा—(हाथ उठा कर) परमात्मा तुम्हारा कल्याण करें तुम प्रसन्न रहो।

(सुदामा नौका पर बैठता है नाविक नाव खोल कर खेता हुआ जाता है, दरिद्र दौड़ा हुआ आता है)

दरिद्र—ओफ! निकल गया, मैं परास्त हो गया। एक छोकरीके आगे लज्जित होगया, नहीं, नहीं, मैं अब भी बल लगाऊँगा। जाऊँगा सुदामा के साथ २ द्वारिका भी जाऊँगा और द्वार पर से ही इसे निराश कर लौटा लाऊँगा। (दरिद्र का प्रस्थान भक्ति का प्रवेश)

भक्ति—बस, बस, अब तेरा अन्त हो चुका, अब तू कुछ भी नहीं कर सकता। मैंने अपने भक्त को अब उस स्थान पर पहुँचा दिया जिस स्थान पर तेरी हवा भी जाने में असमर्थ है। (माया का प्रवेश)

माया—यदि वह जाने में असमर्थ है तो मैं जाऊँगी और तेरे भक्त को वहाँ से खाली ही हाथ लौटाऊँगी। (प्रस्थान)

भक्ति—जा, जा, अब तू भी मेरे सुदामा का कुछ नहीं कर सकती।

सङ्कट दूर भागेंगे तुरत मेरे सुदामा के।
लगायेंगे गले उसको प्रीतम सत्यभामा के॥
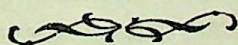
दृश्य--दूसरा

स्थान-सेठ लक्ष्मीचन्द का घर।

(बिट्ठल और रामू का प्रवेश)

बिट्ठल—भाई रामू! यह सूम पिता तो हम लोगों को इस तरह एक पैसा भी न देंगे।

रामू—तो कोई उपाय करो।

बिट्ठल—मैंने दो साधुओं को इस काम के लिए ठीक किया है।

रामू—वे लोग क्या करेंगे?

बिट्ठल-वे अपनी चालाकी से पिताजी को बहकावेंगे, अपने चंगुल में फँसा कर उनसे गहरी रकम वसूल करेंगे और वह रकम हम लोगों को दे देंगे।

रामू—ठीक है, वो साधु हैं कहाँ!

बिट्ठल—अब उनके आनेका समय हो गया है. वे आते ही होंगे।

रामू—(सामने देखकर) देखो! वे जो सामने से दो साधु आ रहे हैं वे ही तो नहीं हैं?

बिट्ठल—हाँ, हाँ, वेही हैं। (दो साधुओं का आना)

बिट्ठल रामू--बाबाजी दण्डवत।

१ साधु—कल्याण हो! बच्चो! तुम लोग यहाँ से भाग जाओ। तुम्हारा सूम पिता इधर ही आ रहा है यदि हम लोगों के पास तुमको देख लेगा तो फिर हमारे माया-जाल में न फँसेगा।

बिट्ठल--जो आज्ञा (रामू से) आओ भाई रामू! हम लोग यहाँ से चल दें। (दोनों का जाना, साधुओं का वहीं पर बैठ कर भजन करना)

गायन।

दोनों साधु—

रसना को राम कहने की अब बान पड़ गई।
हमको हमारे राम की पहचान पड़ गई॥
पोथी उलटते माला फेरते ही युग गया।
मत धर्म से ये जान परेशान हो गई॥
वीणा के साथ बज उठी, तन्त्री हृदय की तब।
अनहद ध्वनि गुरु-मन्त्र की जब कान पड़ गई॥

पर्दा दुई का उठ गया खुद खो गई खुदी ।
दिल ही में मिला 'रामशरन' जान पड़ गई ॥

(लक्ष्मीचन्द सेठ का आना)

लक्ष्मीचन्द-अपने रामका तो यही सिद्धान्त है कि चमड़ी जाय तो जाय मगर दमड़ी न जाय। घरवाले कहते हैं कि धन बटोर कर क्या करोगे? एक दिन मर ही जाना है। मैं कहता हूँ कि संसार में वही मरते हैं जो धन को फँक देते हैं या जन्म से कङ्गाल रहते हैं। जिनके पास चकाचक खजाना भरा रहता है वह कभी नहीं मरते। अपने राम को इन सब झगड़ों से क्या, मरें घर वाले और मर जाय ये सारा जमाना, पर यहाँ तो सिद्धान्त अटल है दमड़ी नहीं गँवाना (साधुओं को बैठा देख कर) हाय, हाय, अरे अभी उस दिन दरिद्री ब्राह्मण एक बोरा अन्न का ले भागा और आज यह दो दो बनमानुस दाढ़ी जटा वाले फिर धरना दिये द्वार पर बैठे हैं। इन पाखण्डियोंसे मेरा पिण्ड किस तरह छूटेगा ? (साधुओं के पास जाकर प्रकट) अरे ओ धर्म की ध्वजा ! तुम लोग इस द्वार पर किस लिये बैठे हो ?

१ साधु-भिक्षाके लिये। इसके अतिरिक्त हमारा कोई काम नहीं।

२ साधु-हमारा काम सिर्फ माँगना और खाना।

लक्ष्मी०-तो क्या तुम्हारे बाप जी ने यहाँ रख दिया है कोई खजाना। बस उठ कर चल दो अब आगे बात न बनाना।

१ साधु-अरे सेठ ! हरिभक्त साधुओंसे इतना बैर क्यों ठाना यह न जाना कि हरिभक्तों के ही आशीर्वादसे जमा है तेरे पास खजाना।

लक्ष्मी०-लेकिन जो सच्चे साधु होते हैं वह तुम्हारी तरह द्वार द्वार भीख नहीं माँगते।

१ साधु-तो क्या तुम हम लोगों को भी उन्हीं असाधुओं की तरह जानकर बेइज्जती करते हो ?

२ साधु-देखो सेठ ! अगर तुम हम लोगोंका अनादर करोगे तो पछताओगे ! सीधी तरहसे भिक्षा देकर हमारा आशीर्वाद लो।

लक्ष्मी०-महाराज अपने हाथ से एक तिनका भी उठा कर देना मेरे नियम के विरुद्ध है। फिर भिक्षा क्योंकर दे सकता हूँ ?

१ साधु-(कुछ सोचकर) ठीक है, मैंने अपने ध्यान से तुम्हारी सब बातों को जान लिया है, तुम्हारे पास धन बहुत है, लेकिन तुम

किसी को एक पैसा भी धर्मार्थ नहीं देते हो । अच्छी बात है, जाने दो । (अपने साथी से) चलो जी ! इस कमनसीब के भाग्य ही में वह विद्या आना नहीं लिखा है ।

२ रा साधु-हाँ, हाँ, चलो चलें ।

लक्ष्मी०-(स्वयम्) क्या यह लोग कुछ विद्या भी जानते हैं ? कोई सच्चे साधु जान पड़ते हैं । (प्रकट) अजी महात्मा जी ! ऐसे नाराज क्यों हुए जाते हैं । आइये जरा बैठिये, मैं आपकी परीक्षा करता था ।

१ साधु-जब तू हम लोगोंका अनादर करता है, भिक्षा नहीं देता तो बैठ कर क्या करेंगे ?

लक्ष्मी०-अजी बाबा जी ! आज कल बहुत से लुटेरे भी साधुका वेष बनाकर फिरा करते हैं, इस लिये मैं आप लोगों की परीक्षा करता था ।

१ साधु-मैं तुम्हारी कञ्जूसी को अच्छी तरह से जान गया हूँ । तुम्हारी दौलत तो अबसे कबकी नाश हो गई होती लेकिन तुम्हारी धर्मात्मा स्त्री और लड़कों के पुण्य से बची हुई है ।

लक्ष्मी०-(आश्चर्य से स्वयम्) अररररर यह तो मेरे सब भेदों को जानते हैं । कोई बड़े पहुँचे हुए साधु मालूम होते हैं ? (प्रकट) महात्मा जी ! मेरे अपराधों को क्षमा करिये, जरासा अपने पैरको बैठकर आराम दीजिये ।

२ रा साधु-सेठ ! बैठा कर क्या करेगा ? हम लोगों को भिक्षा देकर बिदा कर ।

लक्ष्मी०-महाराज ! आप लोगों को बैठा कर यह सेवक सेवा करेगा गुरुमन्त्र लेकर कुछ विद्या सीखेगा ।

(दोनों साधु और लक्ष्मीचन्द बैठते हैं)

१ ला साधु-यदि तू हम लोगों से कुछ विद्या सीखना चाहता है तो हमारे सवाल को पूरा कर ।

लक्ष्मी० वह सवाल क्या है ?

१ ला साधु—हम एक मन्दिर बनवाना चाहते हैं ।

लक्ष्मी०—(स्वयम्) याने सारे खजानेपर ही हाथ फेरना चाहते हैं । (प्रकट) बहुत अच्छा विचार है ।

२ रा साधु-इस कार्य में तीन हजार रुपये की दरकार है ।

लक्ष्मी०-इस काम के लिये तो बड़े २ धनियों का द्वार है। बन्दा तो एक पाई भी देने से लाचार है।

२ रा साधु-फिर हम लोगों का बैठना बेकार है।

१ ला साधु-चलो चलें, यह मूर्ख बड़ा ही गँवार है।

२ रा साधु-अभागे का भाग्य कहाँ जो उस रत्न को पा सके।

(उठने चाहना)

लक्ष्मी०-[पकड़ कर] अजी नाथ जी! नाराज न होइये। यह बतलाइये कि इतना अधिक धन देनेपर आप मुझे कौनसी चीज देंगे?

१ ला साधु—[दूसरे से] बतला दो।

२ रा साधु-(पहले से) अभी नहीं (लक्ष्मीचन्द से) देंगे क्या? धर्म करोगे स्वर्ग मिलेगा।

लक्ष्मी०-स्वर्ग किसको कहते हैं?

१ ला साधु-सुख को।

लक्ष्मी०—तो महाराज! मुझे दुख ही कौन सा है?

२ रा साधु-इस जन्म के किये हुए पुण्य का फल पूर्वजन्म में मिलता है। मर जाने पर उत्तम योनि में जन्म होता है।

लक्ष्मी०-तो महाराज! उस सुख को आप ही भोगिये, मुझे तो आप इसी योनि में छोड़ दीजिये मैं इसी योनि में बहुत सुखी हूँ।

१ ला साधु- (दूसरे साधु से) बेकार समय नष्ट कर रहे हो इस अभागे के भाग्य में वह विद्या आनी ही नहीं लिखी है; चलो किसी दूसरे भाग्यमान को चल कर उस विद्या को सिखावें और उसी से देवालय बनवावें।

लक्ष्मी०-महाराज! वह कौन सी विद्या है जिसे आप बता कर इतना अधिक धन लेना चाहते हैं?

२ रा साधु-गुप्त खजाना दिखाई देने का अञ्जन।

लक्ष्मी०-(घबरा कर स्वयम्) अञ्जन, क्या इन लोगों के पास कोई अञ्जन है? यदि ऐसा है तो तमाम जमीन के अन्दर का गड़ा हुआ धन दिखलाई दे सकता है। तब तो इनसे यह विद्या अवश्य सीखनी चाहिये। [प्रकट] साधुजी! मुझसे गलती हुई उसकी आपसे क्षमा चाहता हूँ।

२ रा साधु-नहीं अब हम क्षमा नहीं कर सकते।

लक्ष्मी०-(हाथ जोड़कर) अरे मेरे माई बाप! मैं तो सिर्फ आपकी

परीक्षा करता था बैठजाइये और कितना धन चाहिये उसे बतलाइये?

१ ला साधु—अच्छा, तीन हजार रुपया लेआ।

लक्ष्मी०—(स्वयम्) तीन हजार! बस, बन्दा बेकार। यदि इन साधुओं के पास अञ्जन न होता तो इनको एक कौड़ी भी न देता। (प्रकट) अच्छा, आप लोग विराजिये मैं रुपयों का प्रबन्ध करता हूँ। [बैठकर] हाँ महाराज जी! आपका वह अञ्जन कैसा है?

२ रा साधु—अरे रुपया भी लावेगा या पहले अञ्जन ही देख लेगा?

लक्ष्मी०-हाँ हाँ. अभी मँगाता हूँ, जरा मुनीम को आजाने दीजिये। तब से अपने उस राम बाण अञ्जन का दर्शन कराइये।

१ ला साधु—जब तक मन्दिर के लिये रुपये न आयेंगे अञ्जन न दिखाया जायगा।

लक्ष्मी०—[स्वयम्] हाय! अब तो देना ही पड़ा (प्रकट) अच्छा, आप विराजिये मैं रुपये लेकर आता हूँ

(कुछ दूर जाकर फिर लौटता है)

क्यों महाराज! कुछ कम रुपयों से काम न चलेगा?

२ रा साधु—नहीं, पूरे तीन हजार।

लक्ष्मी०-(स्वयम) सुनते ही चढ़ गया बुखार, पूरे तीन हजार (प्रकट) अच्छा, लाता हूँ।

[प्रस्थान]

१ ला साधु—अब क्या है विचार?

२ रा साधु—बस, चल देना चाहिये। काम हो गया। "परोपकारायपुण्याय पापाय पर पीड़िनम्" झूठ बोला तो परोपकार करने के लिये।

[बिट्ठल का प्रवेश]

बिट्ठल—प्रणाम भगवन्!

१ ला साधु—प्रसन्न रहो। [कुछ कान में कहकर, समझा]
अच्छा, तो हम लोग जाते हैं अब तुम अपना काम बना लेना।

बिट्ठल—जो आज्ञा! प्रणाम!

दोनों साधु—कल्याण हो।

[एक ओर साधुओं का दूसरी ओर बिट्ठल का जाना लक्ष्मीचन्द का थैली लेकर आना]

लक्ष्मी०—[साधुओं को न देखकर] क्या वे दोनों अञ्जन दिखाने वाले साधु चले गए! हाय, अब कहाँ ढूँढूँ! मेरे हाथ से तमाम

दुनियाँ की दौलत निकल गई । मैं लुट गया, मैं मर गया, मेरा सारा विचार नष्ट हो गया ।

[बैठकर सोचता है, बिट्ठल का प्रवेश]

बिट्ठल—पिता जी !

लक्ष्मी—बिट्ठलदास ! क्या तू ने इस घर से दो साधुओं को जाते देखा है ?

बिट्ठल—जी हाँ, वे साधु तो मुझको एक प्रकार का अञ्जन बनाने की विधि बताकर चले गए ।

लक्ष्मी—(खुश होकर) तुझे अञ्जन बनाने की विद्या सिखा गए ! तो मुझे भी सिखा दे ।

बिट्ठल—नहीं, वे साधु कह गए हैं, कि अगर तुम किसी को बताओगे तो तुम्हारी विद्या नष्ट हो जायगी ।

लक्ष्मी०—अरे तो यह तीन हजार रुपया ले जाकर उन्हें दे और मेरी तरफ से हाथ जोड़कर यहाँ ले आ, मैं भी उनसे सीख लूँ ।

बिट्ठल—आप न घबड़ाइये रुपया दीजिये मैं उनको अभी जाकर बुला लाता हूँ ।

लक्ष्मी-[थैली देकर] ले बेटा जल्दी जा और उन्हें बुलाकर लेआ ।

बिट्ठल—अभी जाता हूँ [स्वयम्] चलो बाबा जी की कृपा से इतनी दौलत तो हाथ आई । [प्रस्थान]

लक्ष्मी—[स्वयम्] अगर उन साधुओं ने रुपया भी ले लिया और न आए तब ? [सोचकर] बिट्ठल के पीछे २ मैं भी जाऊँ अगर आवें तो ठीक नहीं तो अपना रुपया छीनकर ले आऊँ । [प्रस्थान]
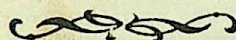
दृश्य तीसरा ।

स्थान-द्वारिका पुरी में कृष्णभगवान की पुष्पवाटिका ।

[सत्यभामा पुष्प शृङ्गार कर झूले पर बैठी हैं चार सहेलियाँ गाती हुई झुलाती हैं]

गायन ।

सहेलियाँ—अजब है रस उपबन की बहार ।
सुखमय सुगन्ध समीर अपार ॥

कोकिल मधुरी गीत सुनावें, मधुकर के गुञ्जत मन भावें।
लिपटी ललित लता तरु माती, शीतल सुखद वृक्ष की छाहों॥
अजब है उस उपवन की बहार।

१ सहेली—बहार आई जिधर देखो उधर ही फूल फूले हैं।
कली पर होके मतवाले अली अपने को भूले हैं॥

२ सहेली—कमलनी को तो देखो किस अदा से मुसकराती है।
भ्रमर जो चूमने आता तो मद से झूम जाती है॥

३ सहेली—भ्रमर आता है चक्कर में किस किसको किधर चूमे।
इधर रसले उधर चूमे या हर गुल का अधर चूमे॥

४ सहेली-हवा जो लग गई फूलों की तो कलियाँ भी हँस २ कर।
नजाकत से खिली जाती हैं खिल कर फूल होने को॥

१ सहेली-भ्रमर की छेड़ से चिढ़ कर झिझकतीं झूमतीं कलियाँ।
खिली जाती है अपने प्रेम का काँटा पिरोने को॥

सत्यभामा—अरी दीवानियों! इतनी अधिक शृङ्गार रस की रसीली तानें लगाओ।

२ सहेली—महारानी जी!
शृङ्गार-रसही तो हम नारियों का आधार है।
जिस अङ्ग में देखो रस को ही भरमार है॥

१ सहेली-चाल ढाल में गाल बाल में आन बान है शान।
३ सहेली-नन सान मुसकान मान पै प्रीतम हो कुर्बान॥
४ सहेली-अधर पार जोबन उठान है काव्य कला के प्रान।
२ सहेली—अँग अँग से अनङ्ग माती नारी रस की खान॥

सत्यभामा—बस चुप भी रहो! तुम्हारी इन रसभरी कविताओं को सुनकर, मेरे हृदय में प्रेम की लहरे हिलोरें मारने लगजाती हैं।

१ सहेली या यों कहिये कि चकोरी चन्द्रदेव को देखने के लिये तरसने लग जाती है।

सत्यभामा—[लजाकर] क्या आज तुम लोगों ने मुझे छेड़ने की ही ठान ली है?

२ सहेली-इसमें छेड़ की कौन सी बात है? क्या मनमोहन प्यारे आपको प्यारे नहीं लगते?

सत्यभामा—बस चुप भी रहोगी, या यों ही आग में घी डालती ही जाओगी!

३ सहेली—आप अपनी आग को शान्त हो रखिये, क्योंकि आज तो भगवान् महारानी रुक्मिणी जी के यहाँ पधारेंगे।

सत्यभामा-(आश्चर्य से) क्या उनके यहाँ जायँगे? स्वयम् मैं उनके विरह-ज्वाल में जलूँगी और वे मुझको छोड़कर रुक्मिणीजी के यहाँ पधारेंगे! मेरे हिस्से के दिन भी उन्हीं को दे डालेंगे। नहीं, नहीं भगवान् ऐसा अन्याय कभी न करेंगे। (प्रकट) सखी! वहन रुक्मिणीजी के यहाँ जाने की बात तुमने कैसे जानी?

३ सहेली-उन्हीं की एक सहेली से।

४ सहेली-पछताइये न, वह महारानी रुक्मिणी जी भी सामने से आ रही हैं। (रुक्मिणी का शृङ्गार किये प्रवेश)

रुक्मिणी-(सत्यभामा को देखकर) वहन सत्यभामा! क्या आज तुम मुझको हराकर ही छोड़ोगी?

सत्यभामा—भला मैं तुमको हराने योग्य कहाँ—

न तुमसे बढ़के गुण मुझ में न सुन्दरता चढ़ी तुमसे।
तुम्ही सच दिलसे अब कह दो कि मैं क्योंकर बढ़ी तुमसे॥
जो हिस्से में हैं आ जाते मुरारी एक दिन वहना।
खटकता शूल सा तुमको मेरे घर श्याम का रहना॥

१ सहेली—ओ हो! अब तो दोनों तरफ से काम बाणोंको वर्षा शुरू हो गई।

रुक्मिणी—नहीं नहीं, यों कहो कि मेरे मुँहकी बात ही छीन ली गई। वहन सत्यभामा! मैं तो कहने ही को थी, कि तुम्हारी सुन्दरता ने मुझपर ऐसा गजब ढा दिया है कि भगवान्‌का दिल ही मेरी तरफ से फिरा दिया है।

सत्यभामा—मेरी सुन्दरता ने अजी भूल है भूल। मुझमें ऐसे कौन से गुण हैं जिसे देखकर मनमोहन प्यारे तुम्हारे प्रेमको भूल जायँगे।

रुक्मिणी-क्यों नहीं, क्यों नहीं, भला तुम न कहोगी तो और कौन कहेगा? हर घड़ी मनमोहन प्यारे को लेकर आनन्द के गीत कौन गायेगा?

सत्यभामा-यह सब मुँह की सफाई है, वर्ना मेरे दिलसे पूछो कि क्या समाई है?

१ सहेली--(दूसरी से) अब हम लोगों के यहाँ से चले जाने में

ही भलाई है वर्ना ठहर जाने में तो लड़ाई ही लड़ाई है।

२ सहेली-हाँ सखी, हम लोगों का चली जाना ही अच्छा है।

(सहेलियों का जाना)

रुक्मिणी-अच्छा बहन सत्यभामा! आज तुम्हीं मनमोहन प्यारे को रिझालो। अपने दिलकी लगो को बुझा लो।

सत्यभामा-नहीं नहीं, मैं ऐसा नहीं चाहती।

सुखी रहो तुम हर घड़ी, प्यारी प्रीतम साथ।
अपने मन को मारना, है यह मेरे हाथ॥

रुक्मिणी-परन्तु कीर्ति तो तुम्हारी ही हुई क्योंकि तुम्हारी ही दया से आज मैं प्रभु प्रेम की अधिष्ठात्री बन सकी।

सत्यभामा-यह तुम्हारी ही ईर्षा है, जो कभी भी प्रभु के प्रेम से पूर्ण न हुई।

[श्रीकृष्ण भगवान का प्रवेश]

श्रीकृष्ण-ओ हो!

है ठना झगड़ा यहाँ दोनों में प्रेमालाप का।
होगा क्योंकर फैसला इस विरह और विलाप का॥

सत्यभामा-होगया आना यहाँ जब दीनबन्धू आपका।
होगया सब फैसला मेरे विरह विलाप का॥

श्रीकृष्ण-[हँसते हुए] तुम्हारे ही दिल से या और किसी के?

रुक्मिणी-छेड़ देना गैर की बातों में तुम्हारा काम है।
रूप ही काला नहीं दिल भी तुम्हारा श्याम है॥

श्रीकृष्ण-प्रेम का उन्माद सर पर छा रहा है इस घड़ी॥
क्यों न दिल पर चोट हो जब सौत हो सन्मुख खड़ी॥

रुक्मिणी-बस बस रहने दीजिये, आपको तो लड़ाई ही लगाने आती है।

श्रीकृष्ण-अजी लड़ लो झगड़ लो लेकिन उस प्रेम देव की आराधना को न छोड़ो।

रुक्मिणी-मुझे इसकी जरूरत नहीं इसकी जरूरत तो (सत्यभामा को दिखाकर) इन्हीं को रहा करती है।

सत्यभामा-और तुम तो सन्तोष करके बैठी रहा करती हो।
कसम खाकर कहो दिल से यही क्या सत्य बातें हैं।

तुम्हें तज सत्यभामा के यहाँ कब श्याम आते हैं॥
श्रीकृष्ण-यह केवल पवित्र प्रेम का उबाल है इसीसे यह हाल है?
रुक्मिणी-भला, समझे तो सही।
सत्यभामा-क्यों न समझते? जहाँ तुम्हारी सी प्रेमिका समझाए और फिर भी प्रेमी के समझ में न आए? ताज्जुब की बात है।
श्रीकृष्ण-कुछ नहीं केवल तुम्हारे प्रेम का प्रसाद है।
सुख चाहत हैं सब ही छन ये दुख का नहिं नामहु जानत हैं।
दुख पावत हैं कहुँ एक घड़ी अकुलाय के प्राण गँवावत हैं॥
प्रेम की डोर से बाँध दियो मन को फिर खैंच लगावत हैं।
डूब गईं कछु चेत नहीं बस मेरोहि दोष बतावत हैं॥

गायन।

सत्यभामा, रुक्मिणी-
तुम तो नट खट कन्हाई बड़ो रार मचाई,
चले जावो यहाँ से सिधारो जी श्याम।
रुक्मिणी-आश देकर न आए सारी रैन गँवाये,
भोर होते पधारे हमारे जी धाम।
सत्यभामा-ऐसा निठुर हिया काहे धोखा दिया,
रात छोड़ा पिया क्यों अकेली वाम।
श्रीकृष्ण-प्यारी धीरज धरो मति ऐसी कहो,
मैं तो सेवा में हाजिर हि रहता सुदाम॥

दृश्य चौथा।

स्थान-बन मार्ग।

(एक ओर से भक्ति दूसरी ओर से माया का आना)

माया-भक्ति! तू अपना हठ न छोड़ेगी?
भक्ति-माया! क्या तू मेरे भक्त सुदामा का पीछा न छोड़ेगी?
माया-नहीं।
भक्ति-यदि तू अपने कार्य से हाथ न उठायेगी तो भक्ति भी अपना काम किये ही जायगी।

माया-इसका परिणाम ?

भक्ति-भगवान जाने !

माया-भक्ति !

क्यों ला रही है कष्ट तू अपने सुकोमल गात पर ।
छोड़ दे हठ मान जा तू मर न अपनी बात पर ॥

भक्ति-सीधी राह और तेरी बताई हुई ? अरे ओ घमंडी औरत सीधी राह वही है जो परमात्मा ने बनाई है।

माया-भक्ति मैं देख रही हूँ कि तेरे अभिमान का पारा सातवें आकाश पर चढ़ रहा है। सुदामा को द्वारिका भेजकर फूली नहीं समा रही है। क्या यह समझ में नहीं आता कि मैं तेरे इन सारे परिश्रमों को व्यर्थ करने के लिये द्वारिका जा रही हूँ ?

भक्ति-चिन्ता नहीं, यदि तू द्वारिका जा रही है तो मैं अपने सुदामा को द्वारिकानाथ के पास ले जा रही हूँ ।

माया—यह बिचार व्यर्थ है ।

तेरे परिश्रम से मुसीबत कम नहीं होगी ।
है जोर तेरा जिस जगह माया नहीं होगी ॥

भक्ति-भक्ति माया को दूर से ही प्रणाम करती है ।

माया-क्या मेरे आगे सिर झुकाकर सुदामा की रक्षा चाहती है ?

भक्ति-रक्षा और तुमसे ? यह भक्ति इस संसार से सदैव के लिये लोप होकर भगवान के पास लौट जायगी मगर माया से अपनी रक्षा के लिये कभी न गिड़गिड़ायगी ।

माया-क्या अभी भी मुझे सताने की इच्छा रखती है ?

भक्ति-नहीं केवल प्रभु की आशा रखती हूँ ।

माया-मैं सुदामा को अत्यधिक कष्ट दूँगी ।

भक्ति-जितना शक्ति हो लगा लो ।

माया-क्या तू मुझे ललकारती है ?

भक्ति-भगवान् के सहारे पर ।

माया-मेरा वल देखना चाहती है ?

भक्ति-अपने उद्योग पर ।

माया-भक्ति रार न वढ़ा ।

भक्ति-माया ! सुदामा को न सता ।

माया–तू मेरे कार्य में हस्तक्षेप न कर।

भक्ति–करूँगी और अवश्य करूँगी। अपने सुदामा के लिये मैं सब कुछ करूँगी।

माया–इस बार के उद्योग से मैं तुझे इस संसार से ही उठादूँगी।

भक्ति–नीचों के मुँह लगना अच्छा नहीं।

माया—भक्ति! जिह्वा को रोक। अन्यथा अनर्थ हो जायगा।

भक्ति–देखा जायगा। (भक्ति का प्रस्थान)

माया–ओह! मैं भगवान की लीला से हार जाती हूँ नहीं तो इस छोकरी को क्षण भर में संसार से उठा देती। (दरिद्र का आना)

दरिद्र–देवी किस चिन्ता में हो?

माया–क्या तुम भक्ति से हार मान गए?

दरिद्र–अगर नहीं माना है तो मानना ही पड़ेगा।

माया–किस लिये?

दरिद्र–इसलिये कि भक्ति ने सुदामा को द्वरिका पहुँचा दिया है। वहाँ जाना मेरी सामर्थ के बाहर है।

माया—यदि द्वारिका जाना तुम्हारी सामर्थ के बाहर है तो मैं द्वारिका जाऊँगी।

दरिद्र–यदि तुम द्वारिका जाओगी तो मैं यहाँ पर अपना कार्य करूँगा।

माया–देखो! जहाँ तक तुम्हारी शक्ति काम कर सके वहाँ तक भक्ति को परास्त करने पर ही तुले रहो।

दरिद्र–परन्तु अब सुदामा के दुख के दिन समाप्त होने पर चुके हैं।

माया–तो क्या तुम इस काम में मेरा साथ न दोगे?

दरिद्र–जब तक उसके दुख के दिन पूरे न होंगे तब तक तो मैं अवश्य ही तुम्हारा साथ दूँगा।

माया–और उसके बाद?

दरिद्र–मेरी ताकत से बाहर हो जायगा।

माया–अफसोस! मुझे तुमसे ऐसी आशा न थी।

दरिद्र–तो क्या तुम भगवान् के नियमों को भी तोड़ देना चाहती हो?

माया-बस जाओ, जो तुम्हारी इच्छा हो करो ! मैं द्वारिका जाती हूँ और सुदामा को वहाँ से भी खाली ही हाथ वापस लौटाती हूँ । अब मुझे किसी भी सहायता की जरूरत नहीं ।

(एक ओर से माया व दूसरी ओर से दरिद्र का जाना)

दृश्य पाँचवाँ ।

स्थान—भगवान् श्रीकृष्ण का मोती महल ।

[भगवान सिंहासन पर सत्यभामा और रुक्मिणी के सहित विराजमान हैं नृत्यकिएँ नाचकर गा रही हैं]

गायन ।

साँवरिया रे, मन मोहे हमारा ।
मधुरी बजाये बसुरिया रे, मन मोहे हमारा ।
शेर०—दिलको भरोसा रखते हैं जिनको लगो नजर ।
जुल्फों की पेंच में पड़े फिरते हैं दरबदर ॥
हसरत से हाथ मलते हैं आँखें हैं तरबतर ।
तेरी झलक की खोज में रमते इधर उधर ॥
घर नहिं आवे नगरियारे, मन मोहे हमारा ।

(एक दासी का आना)

दासी—दीनानाथ ! द्वाररक्षक उपस्थित होकर कुछ प्रार्थना करना चाहता है ।

श्रीकृष्ण—आने दो । (दासी का जाना, द्वाररक्षक का आना)

द्वाररक्षक—कीति सदा भगवान की अटल रहै संसार ।
भक्तन को प्रभु प्राण सम जय जय कृष्ण मुरार ॥

श्रीकृष्ण-द्वारपाल ! क्या समाचार लाये हो ?

द्वाररक्षक-त्रिलोकीनाथ !

अन एक खड़ो प्रभु द्वार पै है वो बसैया न जानि परै केहि गामा ।
शीश पगा न झगा तन पै नहिं पाँव उपानह है अभिरामा ॥
मित्र कहै अपने को प्रभू वह आवन चाहत है यहि ठामा ।
केतिक रोकों पै मानत नाहिं है नाम बतावत विप्र सुदामा ॥

श्रीकृष्ण (सिंहासन से उठते हुए) क्या मेरे परम मित्र सुदामाजी

यहाँ पधारे हैं ? आदरके साथ ले आओ ! (सत्यभामा आदि से) जाओ तुम लोग पूजन का सामान ले आओ।

(सत्यभामा सखियों को इशारे से सामग्री लाने के लिये कहती हैं, भगवान सुदामा का स्वागत करने के लिये आगे बढ़ते हैं, सुदामा का आना, भगवान का दौड़कर सुदामा को छाती से लगाना, सत्यभामा रुक्मिणी आदिका आश्चर्य करना, सखियोंका पूजा का सामान लेकर आना)

श्रीकृष्ण–भाग वक्षस्थल के जागे हैं बड़ी मुद्दत के बाद।
आज किस्मत खुल गई भुजदण्ड की मुद्दत के बाद॥

सुदामा—मेरे आराध्य देव ! मुझे कण्ठ से लगाने में आप के कपड़े मैले हो जायँगे। (कृष्ण का कपड़ा झाड़ता है)

श्रीकृष्ण—कपड़े तो मैले तब होते जब तुम्हारा दिल मैला होता।
रास्ते की धूल से कपड़ा न मैला होयगा।
धूल चरणों पै है ये नेत्र का जल धोयगा।
आइये इस सिंहासन पर विराजिये।

सुदामा–नहीं, मैं उस सिंहासन पर बैठने के योग्य नहीं हूँ।
(जमीन पर बैठना)

श्रीकृष्ण—(हाथ पकड़ उठाकर) मित्र यह क्या करते हो ?

सुदामा—दीनानाथ ! मैं जिस स्थानपर बैठ गया हूँ, उस स्थान के भी योग्य नहीं हूँ। फिर आप क्यों हठ करते हैं ?

श्रीकृष्ण–नहीं, नहीं मित्र तुम्हारे प्रेम और अनन्य भक्तिका आसन तो इतना ऊँचा है, कि उसके आगे यह सिंहासन तुच्छ है तुम सुखपूर्वक इस पर विराजो।

होयगो पवित्र आज पदरज को पाय यह,
धन्य भाग याहू के भये हैं मित्र जान लो।
महूँ भयो धन्य आज दर्शन को पाय तव,
भाग्य की बड़ाई नहिं कर सकूँ मान लो॥
धन्य मार्ग, गली, पौरि, महल अटारी सब,
धन्य आज सारी यह द्वारिका को जान लो।
बैठो अब लाज छोड़ि भाषो दिल खोलि सब,
बैठवे की जिद्द मति हिये बीच ठान लो॥

रुक्मिणी-(सत्यभामा से) बहन सत्यभामा ! यह कैसा चरित्र है ? (सुदामा की ओर लक्ष कर) जरा भगवान के मित्र की ओर तो देखो ! जान पड़ता है इसने कभी अच्छे वस्त्रों का दर्शन भी नहीं किया है। क्या भगवान को और कोई मित्र इस संसार में नहीं मिला ?

सत्यभामा—बहन रुक्मिणी ! इनको लीला ये ही जानें। न जाने यह ब्राह्मण देवता कौन से देश के रहनेवाले हैं, जिस देश पर ऐसा घोर दरिद्र छा रहा है ?

रुक्मिणी-बहन, जैसा सुना था वैसा ही देखा, भगवान के मित्र को देखकर तो प्रत्यक्ष प्रमाण मिलता है, कि व्रज में भगवान ने ग्वालिनों के यहाँ दूध दही की अवश्य चोरी की है।

सत्यभामा-तो इनमें झूठ ही क्या है? भगवान का ग्वालों के साथ बनमें गौएँ चराना, उनके साथ बैठकर छाक खाना सबको मालूम है।

रुक्मिणी—लेकिन हम लोगों के सामने तो भगवान बड़े घमण्ड की बातें किया करते हैं। अब इनकी करनी इनसे पूछनी चाहिये।

सत्यभामा-अच्छा मौका हाथ आया है, अब अकेले में पाकर इनसे समझ लिया जायगा।

श्रीकृष्ण-(सुदामा को सिंहासन पर बिठाकर) लाओ, महाराज के पग पखारने के लिये जल की झारी लाओ।

(सुदामा के पैरों के नीचे एक सहेली परात रखती है सत्यभामा झारी उठाती है भगवान नीचे बैठे सुदामा के पैर पकड़कर)

श्रीकृष्ण—लाओ मित्र ! अब मुझे पद पखारने दो।

सुदामा-(पैर उठाकर) हरे,हरे, हरे ! यह आप क्या अनर्थ करते हैं ?

जिन चरण को रज को छूते तर गई पत्थर शिला।
जिद्द कर केवट ने धोये स्वर्ग उसको है मिला ॥
छा रहा त्रैलोक्य में जिनके चरण रज का प्रताप।
उनसे धुलवा पाउँ को अब नर्क में जाऊँ मैं आप ॥

श्रीकृष्ण—नहीं नहीं, ये-

हाथ हत्यारे हुए हैं पापियों को मार कर।
शुद्ध ये अब होवँगे तव चरण को पखार कर ॥

लाइये, अब न शर्माइये, मुझे पाँव पखारने दीजिये।

(दोनों पैर पकड़कर झारी से धोना चाहते हैं)

रुक्मिणी-महाराज इनके पैर मुझे धोने दीजिये, इस पुण्य में मेरा कुछ भी हिस्सा होने दीजिये ।

श्रीकृष्ण-यदि ऐसी इच्छा है तो तुम पानी डालो, अपने हिस्सेके अनुसार पुण्य में भाग ले लो।

(रुक्मिणी जी झारी लेकर पानी डालती हैं, भगवान सुदामा के चरण धो थाली हाथ में उठाकर खड़े हो जाते हैं)

श्रीकृष्ण-जो ऐसे निःस्वार्थिका, मिले चरण जल पान।
नाश होयँ दुख दर्द सब, गुण में सुधा समान॥

(चरणामृत पीना)

लो देवियो तुम भी अपने जन्म को सफल कर लो।

सत्यभामा-लाइये भगवन् लाइये-

पिया खुद आप स्वामी ने तो यह हमको भी प्यारा है।
तुम्हारा रास्ता जो है वही रास्ता हमारा है॥

(सत्यभामा आदि भी पीती हैं)

रुक्मिणी-दीनानाथ! क्या आपको संसार में और कोई मित्र नहीं मिला ?

श्रीकृष्ण-परख सकता न हीरे को है इक अनजान दहवाती।
जनाई तुमको क्यों कर दे गँवारी तुम हो कहवाती॥

सत्यभामा—हम नारियाँ तो गँवारियाँ हुई हैं, परन्तु आप के मित्र की बड़ी ही सुन्दर छटा है।

श्रीकृष्ण—तेजस्वी सूर्य्य पर सावन भादों की घटा है। मित्र के शुभागमन पर अपने सहेलियों से मङ्गल गान गाने के लिये कहो।

(रुक्मिणी का सहेलियों से इशारा करना भगवान का सुदामा के पास बैठ कर पैर दबाना)

सहेलियाँ— गायन।

प्रेम से प्रभु का ध्यान लगाओ।
प्रेम से प्रभु हैं बाँधे, भक्त जन प्रेम को साधे।
प्रेमी के आराधे, प्रेम का अमृत चखो चखाओ॥
प्रेम से मन करि अर्पण, दयामय का कर दर्शन।

श्याम रूप सुन्दर तन चतुर्हस्त प्रभु पाओरे ॥
प्रेम से प्रभु का० ॥

(भगवान सत्यभामा आदि को पैर दबाने के लिये इशारा करते हैं,
सत्यभामा और रुक्मिणी बैठ कर पैर दबाती हैं)

सुदामा—(लज्जा और संकोच से पैर बटोर कर) भगवन् ! आप यह क्या करते हैं ? इससे मुझे क्लेश होगा।

श्रीकृष्ण—अच्छा जब इन्हें संकोच होता है तो छोड़ दो, जाओ भोजन का प्रबन्ध करो।

(सत्यभामा आदि सबका जाना)

श्रीकृष्ण—क्यों मित्र सुदामा ! वह समय तुमको याद है जब हम और तुम दोनों महर्षि सान्दीपनजी की पाठशाला में एक साथ पढ़ा करते थे ?

सुदामा—खूब अच्छी तरह। मेरा और तुम्हारा एक साथ पढ़ना और खेलना कल का सा जान पड़ता है।

श्रीकृष्ण—और गुरुआनोजी की आज्ञा से एक साथ लकड़ियाँ लेने जाना और साथ ही साथ वह चने खाना ?

सुदामा-(लज्जित होकर) न लो, भगवन् ! अब उसका नाम न लो !

याद उसकी जिस समय आती हृदय में वेग से।
उस समय मानों मुझे हनता है कोई तेग से ॥

श्रीकृष्ण—(स्वयम्) न घबराओ मेरी माला में अब एकही दाना बाकी रह गया है।

रुक्मिणी–(प्रवेश कर) महाराज सुदामा जी !

सुदामा—जी मा जी, मा जी !

रुक्मिणी—आपकी मित्रता का जिक्र तो भगवान हमलोगों से बराबर किया ही करते थे, परन्तु आज हम लोगों के सौभाग्य से आपके साक्षात् दर्शन भी हो गये।

सुदामा-मा जी ! यह मेरे सौभाग्य की बात है, कि मेरे ऐसे एक तुच्छ दरिद्र ब्राह्मण का जिक्र इस राजमहल के अन्दर होता रहा।

श्रीकृष्ण-कहो भाई सुदामा ! अपने देश से हमारे लिये कौन सी सौगात लाए हो ?

सुदामा—हरे, हरे हरे सौगात और आपके लिये—

जो कि दाता विश्व का खुद त्रिलोकी नाथ है।
स्वर्ग सी दुर्लभ पदारथ तक भी जिसके हाथ है॥
इन्द्र का वैभव भी सम्मुख में तुम्हारे हेठ है।
कौन सी सौगात ला करता तुम्हारा भेट है॥

श्रीकृष्ण—केवल बातों ही में न टालो। भाभी जी ने जो कुछ मेरे लिये भेजा है उसे निकालो।

सुदामा—(स्वयम्) क्या मेरे बगल की दबी हुई पोटली नजर पड़गई?

श्रीकृष्ण—(पोटली बगल से खींच कर) क्यों छिपाते हो? यह क्या है?

सुदामा—(स्वयम्) ढोल के अन्दर पोल। अब फजीता हुआ।

श्रीकृष्ण—क्या भाभीजी की दी हुई भेट को भी मुझसे छिपाकर ले जाना चाहते हो?

सुदामा—नहीं प्रभो! यह तो......(पोटली लेना चाहता है)

श्रीकृष्ण—यह तो वह तो कुछ भी नहीं, जरा देखने दो।

(पोटली लेकर खड़े हो जाना)

सुदामा—(स्वयम्) ले गया, पोटली छीन कर ले गया।

श्रीकृष्ण—इस पोटली में कोई बड़ी ही अमूल्य वस्तु भाभीजी ने मेरे लिये यत्न पूर्वक बाँध कर भेजा है।

(श्रीकृष्ण चावल की पोटली को खोलकर बैठ जाते हैं)

श्रीकृष्ण—(एक मुट्ठी चावल खाकर) अहाहा बड़े ही मीठे और स्वादिष्ट हैं—

कौन कह सकता है यह चाँवल पुराने हैं।
मेरी आँखों से देखो तो मोतियों के दाने हैं॥

(श्रीकृष्ण दो मुट्ठी चाँवल चबाकर तीसरी मुट्ठी उठाते हैं सत्यभामा का आना)

सत्यभामा—(स्वयम्) अररर भगवान ने दो मुट्ठी चावल चबा कर दो लोक तो दे दिया अब तीसरा लोक भी देना चाहते हैं, अपने रहने का ठिकाना भी नहीं रखना चाहते हैं। (प्र कट) ठहरिये, ठहरिये, क्या सौगात का माल सब आपही खा जायँगे, हम लोगों को न चखाएँगे।

(भगवान पोटली सत्यभामा को देकर उदासीन हो जाते हैं)

श्रीकृष्ण—देवी! इस समय यहाँ आकर तुमने अमृत में विष

का काम किया।

सत्यभामा-(हँसते हुए) बलिहारी है आपके विचार को। भला इस प्रकार भक्त के आधीन हो जाना और अपने आगे पीछे का विचार न करना क्या अनुचित नहीं है।

श्रीकृष्ण--ऐसे मित्र के सन्मुख चौदहो भुवन की सम्पत्ति तुच्छ है, अच्छा, जो भवितव्य है वही होता है। (सुदामा से) चलो मित्र स्नानादि से निवृत्त होकर वस्त्र बदलो, रसोई भी तैयार है।

सुदामा—प्रभो! आपकी माया आप ही जानें, आप क्या कर रहे हैं और क्या करेंगे? यह कौन जान सकता है?

(आगे आगे श्रीकृष्ण पीछे सुदामा सत्यभामा आदि का प्रस्थान)

—❦—
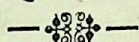
दृश्य छठवाँ।

स्थान—राज पथ।

[भगवान श्रीकृष्णजी का प्रसन्न मन से प्रवेश]

गायन।

भक्तन की रुचि राखौं, मैं तो।
भक्त प्रेम युत टेरै मोहि को,
स्वर्ग त्यागि कै धावौं, मैं तो,
जो केवल मम आश करैं नित,
विपदा सकल नसावौं, मैं तो॥
जो मोहिं बाँधै प्रेम डोर सों,
तेहि को दास कहावौं, मैं तो॥

श्रीकृष्ण—धन्य है! भक्ति की महिमा भी धन्य है—

रोम रोम में छा रही जिसके भक्ति महान।
उसके प्रेम की डोरि में क्यों न बँधे भगवान॥

मित्र सुदामा! तुम धन्य हो। तुम्हारा प्रेम आदर्श प्रेम है, तुम्हारी भक्ति, सराहनीय भक्ति है, सङ्कोच में पड़कर अपनी गिरी हुई हालत को मेरे सामने कहना नहीं चाहते हो, मित्रके आगे हाथ फैलाकर माँगना नहीं चाहते हो तो क्या हुआ? तुम्हारे तमाम

दुखों को दूर कर देने के लिये मैं तैयार हूँ। अब तुम्हारे मुसीबत के दिन पूरे हो चुके हैं।

जब घोर मुसीबत में भी था ध्यान तेरा मुझ पै।
तो क्यों न तन मन व धन मैं वार दूँगा तुझ पै॥

(आकाश की ओर देखकर) आओ संसार को मोहित करने वाली योग माया प्रगट हो। (योगमाया का आना)

योगमाया—भगवन् प्रणाम।

श्रीकृष्ण—प्रसन्न रहो।

योगमाया—दासी को किस लिये याद किया है ?

श्रीकृष्ण—जरा विश्वकर्मा जी को मेरे पास भेज दो।

योगमाया - जो आज्ञा (प्रणाम कर जाना)

श्रीकृष्ण सारा कृत्य विश्वकर्मा द्वारा ही ठीक कराने का विचार किया है, कारण कि माया सुदामा से रुष्ट है, यदि इसको कहता तो इसके हृदय को दुःख होता। (विश्वकर्मा का प्रवेश)

विश्वकर्मा—दीनानाथ के चरणों में सेवक का प्रणाम !

श्रीकृष्ण—आइये भक्तों की रक्षा करने वाले भाई विश्वकर्मा जी ! मैंने आपको इस अर्ध रात्रि के समय बड़े आवश्यक कार्य के लिये यहाँ आने का कष्ट दिया है।

विश्वकर्मा—सेवक स्वामी की सेवा के लिये हर समय तैयार है, आज्ञा कीजिये।

श्रीकृष्ण—मेरे परम मित्र सुदामा जी के घर में भयानक दुर्भिक्ष निवास कर रहा है। उसके कष्ट से घबराकर सुदामा जी मेरे यहाँ पधारे हैं। उनकी अनन्य भक्ति और अगाध प्रेमसे प्रसन्न होकर मैंने उनको दो लोक की सम्पदा देने का निश्चय किया है। आप इसी समय द्रविड़ देशान्तर्गत विदर्भ नगर की ओर जायँ और उस देश को 'सुदामापुरी' के नाम से निर्माण कर उनकी कुटी के स्थान पर रत्नजटित स्वर्ण मन्दिर बना दें और भण्डारी कुबेर जी को सूचित कर दें कि वे दो लोक की सम्पदा उनके घरमें लाकर भर दें। इतना कार्य कर मुझे सूचना दें

विश्वकर्मा—(हाथ जोड़) जो आज्ञा। परन्तु त्रिलोकीनाथ ! इतने अधिक दयालु होते तो आजतक मैंने आपको कभी नहीं देखा। आज इस पृथ्वी पर ऐसा कौन भाग्यशाली जन्म लेकर आया जिसके ऊपर भगवान इतने दयालु हो रहे हैं ?

श्रीकृष्ण—विश्वकर्मा जी ! वह मेरे बाल सखा हैं। सहपाठी हैं, बन्धु हैं, आत्मीय हैं, कहाँ तक मैं कहूँ मेरे शरीर के प्राण हैं। उन्हीं की कृपा से मुझे गुरु सान्दीपन जी ने पूर्ण विद्या पढ़ाई थी।

विश्वकर्मा—धन्य हैं, भगवान आप धन्य हैं। तमाम दुनियाँ को विद्या का बनाने वाले तीनों लोक चौदहों भुवन को रचाने वाले जो आप सो गुरु सान्दीपन की विद्या दान के बोझसे नहीं सुदामा के एहसान के बोझ से दबे जा रहे हैं। आपके दयालु हृदय की प्रशंसा शेष और सारदा भी कहने में असमर्थ हैं ! धन्य हैं ! आप धन्य हैं !!

श्रीकृष्ण—विश्वकर्मा जी ! मुझे लज्जित न करें, इस समय विदर्भ नगर पधार मेरे भक्त का उद्धार करें।

विश्वकर्मा—(हाथ जोड़) जो आज्ञा।

(एक ओर भगवान दूसरी ओर बिश्वकर्मा का प्रस्थान)

दृश्य-सातवाँ।

स्थान—विदर्भदेश का मार्ग।

(दरिद्र को पकड़ कर भक्ति का प्रवेश)

भक्ति—बोल ! अब भी तू अपना डेरा यहाँ से उठाता है या नहीं ? तेरे अभिमान का पारा आसमान से उतरा या नहीं ? बोलता क्यों नहीं ! चुप क्यों है ? भक्त सुदामा के घर जाता है या तुझे निकालने के लिये कोई और प्रबन्ध करूँ ?

दरिद्र—कोई चिन्ता नहीं,यदि इस बार मुझे नीचा देखना पड़ा है तो अब न देखूँगा। तेरी ताकत अब मेरे सामने न चलेगी। सुदामा को तूने भगवान के पास पहुँचा दिया, उसके मुसीबत के दिन भी खत्म हो चुके, इसलिये मैं लाचार हूँ। नहीं तो तुझे अवश्य ही मजा चखा देता।

जो हावी हो गई मुझ पर है ईश्वर की कृपा तुझ पर।
करूँ क्या कोशिशों का ही न था हथियार जब मुझ पर॥

भक्ति—क्या अभी तक घमण्ड का पारा नहीं उतरा, अभी और कुछ दुर्दशा कराने को दिल में ठन रही है? तो जा और अपने हिमायती के साथ मिल कर अपनी ताकत दिखा, इस बार तो मैं तुझे छोड़ देती हूँ लेकिन याद रख अगर तूने मेरे किसी भी भक्त को सताया तो फिर तेरा इस दुनियाँ में नामों निशान तक न रहने दूँगी।

गर किसी के दिल को तू ने फिर दुखाया जान कर।
तो सजा इसकी भयानक है तुझे यह ध्यान धर॥

दरिद्र—बस सावधान हो जा! न कहने योग्य बात बहुत कही अब न कहना नहीं तो विनाश का सामान होगा।

भक्ति—जान पड़ता है तेरे सिर का भूत अभी नहीं उतरा है, इसी लिये इतनी दुर्दशा पर भी तेरा दिमाग ऊँचा है। तुझ नीच से विवाद करना मेरी योग्यताके खिलाफ है। इस लिये साफ शब्दों में बता तू भक्त सुदामा के घर से अपना बोरिया बिस्तर उठाता है या मुझे कोई दूसरी नीति का प्रयोग करना पड़ेगा!

दरिद्र—जाता हूँ, सुदामा को छोड़ कर इस बार तो जाता हूँ, लेकिन तुझे सावधान किये जाता हूँ, कि मेरे खिलाफ अगर तू फिर कभी सिर उठायेगी तो उसका पूरा २ मुँहतोड़ जवाब पाएगी।

भक्ति—जा जा! अपनी जान बचाकर भाग जा, नहीं तो मेरे गुस्से की आग में जलकर राख हो जायगा। अगर तुझे अपनी और अपने हिमायती के ताकत पर अभिमान हो तो चलकर किसी भक्त पर आजमा। देख तेरी जीत होती है या मेरी।

दरिद्र—न घबड़ा, समय आने पर उसे भी देख लूँगा।

जहाँ पर मैं रहूँगा वहाँ पर तू नहीं होगी।
तेरी ताकत कहीं होगी मेरी ताकत कहीं होगी॥

बस, अब मुझे अपना बोरिया बिस्तर लेकर चल देना चाहिये नहीं तो विश्वकर्मा मेरा घर तहस नहस कर बाल बच्चों का सत्यानाश ही कर डालेंगे। (दरिद्र का जाना)

भक्ति—अधमरा तो हो चुका है अब की बार प्राणान्त ही करके छोड़ूँगी। (जाना)

दृश्य आठवाँ।

स्थान-विदर्भ देश।

(सुदामाजी की कुटी का परिवर्तन होकर स्वर्ण महल हो जाना, दासियों का आकर सुदामा के सोते हुए बालकों को उठाकर जड़ाऊ पलङ्ग पर सुलाना, निद्रावस्था में ही सुशीला की टूटी चारपाई को बदल कर जड़ाऊ पलङ्ग हो जाना, सुशीलाके वस्त्रोंका परिवर्तन, सहसा सुशीला की निद्रा भंग होना, सुशीला का घबड़ाकर उठबैठना, चकित हो चारो ओर देखना। आवाज के साथ भगवान श्रीकृष्ण का बंशी लिये प्रगट होना)

सुशीला--[आश्चर्य से] कौन! तीनों लोक के स्वामी श्रीकृष्ण भगवान्! जय श्रीकृष्णचन्द्र भगवान को जय।

(सुशीला का दौड़ कर कृष्ण के पैरों पर शिर रखना भगवान का हाथ उठाकर आशार्वाद देना)

सुशोला—[घुटने के बल बैठ हाथ जोड़] हैं! क्या मैं स्वप्न देख रही हूँ? नहीं, नहीं, मैं तो जाग रही हूँ. मेरी मति में भ्रम हो गया है। कुछ समझ में नहीं आता कि यह क्या हो रहा है।

श्रीकृष्ण—भाभी जी! हतज्ञान न होइये। यह सोने का महल आपका ही है, सैकड़ों दास, दासियाँ, हाथी, घोड़े, रथ, पालकी आपकी सेवा में हाजिर हैं। इसके सिवा दो लोक की दौलत आपके खजाने में भरी हुई है। आपके दो मुट्ठी चावल खाए जिसके बदलेमें दो लोक की दौलत आपको अर्पण की अब आप सुख से अपने जीवन को बिताइए, दुःखके दिनको दिलसे दूर निकालिये-भाई सुदामाबड़े सुखपूर्वक द्वारिका पहुँच गए। इस वक्त मेरे राज-महल की शोभा को बढ़ा रहे हैं। अब जल्द ही यहाँ आकर आप लोगों से मिलेंगे।

सुशीला—उपकार, दीनानाथ! उपकार—

दर्शन दिखा प्रभु! आपने दुख दर्द सारा हर लिया।
दीन भिक्षुक के यहाँ भण्डार-लक्ष्मी भर दिया॥

भगवन्! क्या आपके भक्त सदैव दरिद्री ही बने रहेंगे?

श्रीकृष्ण—नहीं भाभी जी। आपकी तथा भाई सुदामा जी की

अनन्य भक्ति और निःस्वार्थ प्रेम से मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ और हमेशा आप लोगों को सुखी रखने के लिये तैयार हूँ। इस संसार का यही नियम है, कि सुख के बाद दुःख और दुःख के बाद सुख प्राप्त होता है। लेकिन मेरे आशीर्वाद से आपका सुख दुःख के रूपमें कभी परिवर्तित न होगा। इस संसार में सुख भोग करने के बाद आप लोगों को मेरा धाम प्राप्त होगा।

सुशीला—दयासिन्धु, आपने जो मेरे साथ उपकार किया है उस से मेरे दुःख अवश्य दूर हो गये, आपकी दी हुई दो लोक की सम्पदा और परम धाम का आशीर्वाद पाकर मैं उतनी सुखी नहीं हुई जितनी सुखी आपके दर्शन पाने से हुई। इस दासी पर सदैव इसी तरह कृपा बनी रहे और समय २ पर इन चरणों के दर्शन हुआ करें।

श्रीकृष्ण—एवमस्तु।

(सुदामा के दोनों लड़के जाग उठते हैं, श्रीकृष्ण भगवान का प्रकाश देख कर चकित हो जाते हैं)

रामशरण—(आश्चर्य से) यह कौन ? भगवान त्रिलोकीनाथ! अहा! कैसा प्रकाशमय सुन्दर स्वरूप है, धन्य हो नाथ! जय भगवान त्रिलोकीनाथ की जय।

(दोनों बालक दौड़कर भगवान के पैर पर गिर पड़ते हैं सुशीला सिर झुका प्रणाम करती है, भगवान हाथ उठाकर आशीर्वाद देते हैं, आकाश मार्ग से ष्प वृष्टि होती है)

(टेबला)

ड्राप।

अङ्क तीसरा

दृश्य पहला।

स्थान—द्वारिका।

[पलङ्ग पर अकेले सुदामा का बैठे दिखाई देना, सुदामा को भगवान श्रीकृष्ण ने अपने हाथ से कुछ न दिया, इसके लिये सुदामा के मन की वृत्ति पलटा खा रही है]

सुदामा—[स्वयम्]

सुमड़ा है जन्म का हर फन में भी चालाक है।
कोरी बातों की ही भर्ती देने वाला खाक है॥

बस इस राजमहल में मखमली गद्दों पर आराम से पड़े रहो। रेशमी चादरों को ओढ़ कर मसहरी के अन्दर गहरी नींद के खर्राटे मारो। घरकी औरत और बाल बच्चे भूखे मरते हों तो मरजाने दो। बापरे बाप! इतनी दौलत कि इन्द्र का वैभव और भण्डारी कुबेर का भण्डार भी इसके आगे तुच्छ है। सब कुछ है लेकिन दिल नहीं।

मोहब्बत सिर्फ मुँह से है न देने का है इक कौड़ी।
परेशानी हुई आकर न आई हाथ इक कौड़ी॥

श्रीकृष्ण भगवान का आना

श्रीकृष्ण-कहो भाई सुदामा!

सुदामा—आइये भगवन्! पधारिये।

श्रीकृष्ण-आज तो समुद्र की लहरों का आनन्द लेने चलेंगे।

सुदामा-प्रभो! आज तो मुझे अपने घर जानेकी आज्ञा दें तो···

श्रीकृष्ण-क्यों, क्यों, भाई सुदामा! इतनी जल्दी घर जाने के लिये क्यों उद्यत हो? क्या देर हो जाने से भाभी जो नाराज होंगी?

सुदामा-नहीं नाराज तो न होंगी लेकिन घर पर अकेली होने के कारण घबराती तो अवश्य होंगी।

श्रीकृष्ण--तुम्हारे द्वारिका आने का समाचार तो उन्हें मालूम ही होगा फिर घबराने की कौन सी बात है?

सुदामा-ठीक है, लेकिन फिर भी औरत की जात है। बाल बच्चों की चिन्ता लग रही है, मैं तो तुम्हारे यहाँ आनन्द मना रहा हूँ, वहाँ पर उन लोगों को क्या दशा होगी, इसी लिये घबरा रहा हूँ।

श्रीकृष्ण-उन लोगोंकी चिन्ता न करो, उनकी रक्षा परमात्मा करेगा, इतनी दूर पैदल चलकर आये हो तो कुछ दिन रह कर ही जाना।

सुदामा--[स्वयम्] रह कर जाना, लेकिन हाथ से उठाकर एक कौड़ी भी न देना।

श्रीकृष्ण-भाई सुदामा! अगर तुम चले जाओगे तो मेरा दिल बहुत घबरायगा। यहाँ तक कि मनाए से भी हाथ में न आएगा।

सुदामा-भगवन्! आपका मिलना भी मेरे दिल को इतना याद

आएगा कि मरने तक भी दिल से न जायगा।

श्रीकृष्ण—तुम्हारी सज्जनता को मैं कभी न भूलूगा।

सुदामा—[स्वयं] और तुम्हारी कृपणता को मैं भी न भूलूँगा।

श्रीकृष्ण - तुम्हारे पधारने से मैं निहाल हो गया।

सुदामा—[स्वयम्] तुम्हें देखकर ही मैं मालामाल हो गया।

श्रीकृष्ण-तुम्हारे आने से आनन्द प्राप्त हुआ और अब जाने से हृदय को दुःख होगा।

सुदामा-भगवन् मेरी भी यही दशा है। आते समय खुश था अब जाते समय हृदय खिन्न हो रहा है।

श्रीकृष्ण-भइया! मैं तुम्हारी जुदाई होने से कई दिनों तक रोता ही रह जाऊँगा।

सुदामा--मैं भी यहाँ से रोता ही घर को जाऊँगा।

श्रीकृष्ण-(स्वयम्) सिर्फ घर पहुँचने ही तक। (प्रकट) तो क्या आज एक दम जाने का ही निश्चय कर लिया है?

सुदामा— हाँ भाई, अब मुझे जाने की आज्ञा दो, मेरा जाना ही अच्छा है। (स्वयम्) शायद अब कुछ देगा।

श्रीकृष्ण—अच्छा जब आप जाना ही चाहते हैं तो जाइये।

सुदामा-(स्वयम्) मेरा और इनका बराबरी का सम्बन्ध है फिर हाथ फैला कर कैसे माँग सकता हूँ! अपने ही मुँह से अपनी इज्जत को कैसे गँवा सकता हूँ?

श्रीकृष्ण—भाई सुदामा! आपकी मित्रता सराहने योग्य है।

सुदामा—(स्वयम्) शायद मेरे चलते समय कुछ देगा।

श्रीकृष्ण—क्यों भाई! आपके घर तो किसी चीज की जरूरत नहीं है?

सुदामा-नहीं भगवन्! मेरे घर पर आपकी कृपा से सब कुछ मौजूद है।

श्रीकृष्ण-अच्छा तो भाई सुदामा! तुम मेरी तरफ से भाभी जी को प्रणाम कहना।

सुदामा—(स्वयम्) देना लेना खाक, खाली खाली प्रणाम और आशीर्वाद (प्रकट) कह दूँगा प्रभो!

श्रीकृष्ण—हाँ भाई सुदामा! यह तो बताओ कि हमारी भाभी ने कोई चीज तो नहीं मँगाई है, यदि मँगाई हो तो कहो। इस घर में जो कुछ भी है वह सब तुम्हारा ही है; संकोच न करना जिस चीज की जरूरत हो उसे कह कर लेलेना।

सुदामा—(स्वयम्) घर तुम्हारा ही है लेकिन किसी चीज को हाथ न लगाना। (प्रकट) हम दीन ब्राह्मणों को इन राजसी सामानों की आवश्यकता नहीं; हमें तो अपनी टूटी मड़इया में फटी कथरी हो सुख देने वाली है।

श्रीकृष्ण-फिर भी गृहस्त हो कोई वस्त्र, आभूषण, धन आदि की आवश्यकता तो पड़ती ही होगी।

सुदामा—(स्वयम्) केवल जबानी त्रैलोक्य का दान हो गया परन्तु हाथ उठाकर एक फूटो कौड़ी न दी—सुशीला कहती थी; कि हरि सब कुछ दगे।

मुँह से होता दान सब कुछ क्योंकि यह नँदलाल हैं।
हाथों से देने के लिये ठन ठन गोपाल हैं॥

श्रीकृष्ण—अच्छा मित्र घर जा कर अपने बालबच्चों का कुशल लिख कर भेजना।

सुदामा—(स्वयम्) यदि जीता बचा तो (प्रकट) हाँ हाँ अवश्य ही भेजूँगा।

व्यर्थ सब मेहनत हुई खाली हि वापस मैं चला।
मतलब न निकला एक यह किस्सा भी पूरा हो चला॥

श्रीकृष्ण- यदि भाभी जीके लिये यहाँ से कुछ सौगात ले जाना चाहते हो तो मैं दिलवा दूँ।

सुदामा-क्यों भाई! तुम बार बार मुझसे उसके बारे में कह कर छेड़खानी क्यों करते हो? क्या आज ही अपनी बुद्धिमानी की इति श्री कर डालोगे (स्वयम्) मैं अपने मुँह से माँगना नहीं चाहता और यह मुझसे मँगवाना चाहते हैं तो क्या करूँ, कुछ माँगलूँ। मित्र ही तो हैं फिर माँगने में संकोच क्यों करूँ? [प्रकट]भाई? घनश्याम!

श्रीकृष्ण—[बीच में ही बात काट कर] अच्छा तो चलिये रथ तैयार है। जिस प्रकार दयाकर यहाँ आए हैं उसी प्रकार कभी २ दर्शन देते रहियेगा।

सुदामा—भला द्वारिकाधीस के शुभ दर्शनों को मैं कभी भूल सकता हूँ। नहीं भगवन्! प्राण रहते तो सुदामा आपको कभी नहीं भूल सकता। (स्वयम्) देखा, जब माँगने के लिये तैयार हुआ तो सीधा घर का रास्ता बताया। अरे यह तो खुद ग्वालिनों से दही घृत माँग २ कर खाया करता था मुझे क्या देगा (प्रगट) अच्छा तो भगवन्! प्रणाम!! (जाने को उद्यत)

श्रीकृष्ण-अब जरा और आजमाना चाहिये, ये शरीर परके कपड़े भी उतरवाना चाहिये (प्रगट) भाई सुदामा! यह जो कपड़े पहने हो अगर जरूरत हो तो ले जा सकते हो।

सुदामा-(स्वयम्) लो कपड़े भी उतरवाए। नहीं भगवन् इन चमकीले कपड़ों की शोभा तो इसी राज-महल में ही है। मेरी टूटी मड़ैया में तो वही फटा हुआ कुरता शोभा देगा। (कपड़े उतारना)

श्रीकृष्ण—नहीं नहीं, मित्र पहने ही जाओ।

सुदामा—(कपड़े उतार अपना फटा कुरता पहन कर) भगवन् प्रणाम

श्रीकृष्ण—भाई सुदामा! मुझे कुछ आशीर्वाद दिये जाओ।

सुदामा-(स्वयम) आशीर्वाद तो मेरा दिल ही दे रहा है। (प्रकट)

दिन दूना निशि चौगुना बढ़े तेरा परताप।
जैसा दान दिया मुझे वैसा पावै आप॥

(सुदामा का जाना श्रीकृष्ण का कुछ दूर जाकर लौट आना)

श्रीकृष्ण—जाओ मित्र, खाली ही हाथ अपने घर तक जाओ मुझे सूम और अनुदार कह कर अपने दिल के गुब्बार को निकालते हुए चले जाओ।

झिझकते झीकते पिटते तुम अपनी राह भर पहुँचो।
विपत्ति का समय इतना ही बाकी है कि घर पहुँचो॥

गायन—ऐसे शुद्ध हृदय से सीखे क्या है आत्मा भिमान।
जान जाय तो जाय मगर जाने न पाये मान॥
चार दिनों का जीवन जग में जीवो साभिमान।
काहे दीन कहो अपने को खोते अपनी शान॥
धन्य सुदामा भिक्षुक हो कर भी न माँगा दान।
धन को लालच में फँस प्राणी दे देते हैं जान॥
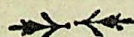
दृश्य-दूसरा ।

स्थान-विदर्भ नगर का मार्ग ।

(कुछ नगर निवासियों का हरि भजन करते हुए आना)

प्रेम हो तो श्री हरी का प्रेम होना चाहिये ।
जो बने विषयों के प्रेमी उनको रोना चाहिये ॥
दिन बिताया ऐश और आराम में तुमने अगर ।
रातको सुमिरन हरी का करके सोना चाहिये ॥
बैठे हृदयमें हैं "हरी" पर भक्ति बिन मिलते नहीं ।
दूध से माखन जो चाहो तो बिलोना चाहिये ॥
हरि भजन से लौ लगा जंजाल दुनियाँ छोड़ के ।
राम भज आनन्द पाकर मगन होना चाहिये ॥

१ नग्रनिवासी-धन्य है भक्त सुदामा जी की भक्ति को धन्य है ! उन्हीं के प्रताप से यह नगर वैकुण्ठ धाम बन गया है। भगवान श्रीकृष्णचन्द्रजी नितप्रति भगवती सुशीलाजी के यहाँ भोग लगाने के लिये पधारते हैं। धन्य हैं भक्त वत्सल भगवान ! धन्य हैं । यह विदर्भ नगर सुदामा पुरी हो गया, इस देश से दरिद्रता का नाम सदा के लिये लोप हो गया ।

२ नग्रवासी--भाई धन्यवाद तो भक्त सुदामा जी को देना चाहिये, जिन्होंने कठिन परिश्रम कर प्राण का मोह छोड़ द्वारिका जा भगवान के साक्षात् दर्शन किये। कोई कोई तो ऐसा भी कहते हैं, कि द्वारिकाधीश ने सुदामाजी को स्वयम् अपने कण्ठसे लगाया। धन्य है ! जिनकी चरण रज को बड़े २ देवादिदेव अपने नेत्रोंसे लगा शिर पर चढ़ाने के लिये तरसा करते हैं उनके विशाल वक्षस्थल से लिपट कर सुदामा जी का जन्म सार्थक हो गया ।

३ नग्रवासी--अहा वह कैसी शुभ घड़ी होगी जब सुदामा जी द्वारिका से लौटकर अपने नग्रमें पधारेंगे और हम सब उनका दर्शन कर अपने को धन्य मानेंगे ।

४ नग्रवासी-देखा भाई ! भक्ति का प्रताप कितना बड़ा होता है, इसे सुदामा जी ने सिद्ध करके दिखा दिया। जो प्राणी प्रभु के प्रेम रस का पान नहीं करते वह दोनों लोक के सुखों को अपने हाथ से

खो देते हैं, जो प्राणी संसार की जड़ रूप माया से विरक्त होकर भगवान का निरन्तर भजन करते हैं उनको भगवान् तीनों लोक की सम्पदा छप्पर फाड़ कर देते हैं !

५ नग्रवासी—ठीक है भाई ! तुम्हारा कहना ठीक है।

गायन—चहो कल्याण; तजो अभिमान।

मिलेगी मुक्ति, भजो भगवान ॥

कुटुम्ब कबीला काम न आवे, जावे सङ्ग न कोई।

जग की माया जग में रहती, जात अकेला प्रान ॥

धरा रह जाता, धन औ मान।

जाता है सङ्ग, ईश्वर का ध्यान ॥

[गाते हुए सबका प्रस्थान, दूसरी ओर से सुदामाजी का घबराये हुए आना सुदामा के पीछे २ नग्र के स्त्री पुरुषों का प्रवेश]

१ नग्रवासी-भक्त सुदामा ! आप धन्य हैं।

सुदामा-भाई साहब ! आप लोग कौन हैं ? इस नग्रका नाम क्या है ?

२ नग्रवासी—इस नग्र का नाम सुदामापुरी है।

३ नग्रवासी—और हम सब आपके दास हैं।

४ नग्रवासी—आप सुदामा इस सुदामापुरी के स्वामी हैं।

१ नग्रवासी—भक्त सुदामा जी ! आप आश्चर्य क्यों करते हैं ?

सुदामा—आश्चर्य करने की बात ही है, न यह मेरा ग्राम है और न हमारी तुम्हारी राम राम है।

३ नग्रवासी-(सबको डाँटकर) सब लोग चुप रहो महाराज बड़ी दूर से पैदल चले आ रहे हैं, थके होने के कारण घबरा उठे हैं। सब लोग शान्तिपूर्वक बैठकर सुदामाजी की सेवा करो। बोलो भक्तराज सुदामा की जय।

(सब लोग जय ध्वनि करि सुदामा जी के हाथ पैर दाबते हैं)

सुदामा—(घबरा कर) अरे तो क्या मुझे जीते जी अपनी मड़ैया तक न जाने दोगे ? मार्ग में ही मेरे हाथ पाँव तोड़ कर फेंक दोगे।

२ नग्रवासी—नहीं महाराज हम सब लोग आपकी सेवा कर अपने जन्म को सार्थक बनाते हैं।

सुदामा—क्यों मुझे मूर्ख बनाते हो ? अपनी सेवा से मुझे क्षमा ही करो।

४—नग्रवासी—हरे हरे हरे, यह आप क्या कहते हैं? आपने जगत् के स्वामी श्रीकृष्णचन्द्र महाराज को मित्र कह कर छाती से लगाया, इस भिक्षुक ग्राम को स्वर्ग-धाम बनाया, हम ग्रामवासियों को दर्शन देकर कृतार्थ किया है।

सुदामा—सच कहो तुम सब कौन हो? मुझे इस देव-माया में क्यों भ्रमा रहे हो? यह स्वप्न की सी बातें क्यों सुना रहे हो?

१ नग्रवासी-धन्य है! सुदामाजी आपके इस सीधेपनको धन्य है।

३ नग्रवासी-सत्य है सुदामाजी बड़े ही सीधे ब्राह्मण हैं, अहा! इन्हें संसार की तनिक भी सुधि नहीं है।

सुदामा—(स्वयम) क्या सचमुच मैं पागल हो गया हूँ? मुझे संसार की कुछ भी सुधि नहीं है। ओफ अगर मैं कुछ देर यहाँ पर और ठहर जाऊँगा तो निश्चय ही पागल हो जाऊँगा (प्रकट) जाने दो, मुझे यहाँसे जाने दो। यदि मेरा भला चाहते हो तो मेरा साथ छोड़ दो, मुझे न सताओ, मैं बड़ा दुखी ब्राह्मण हूँ, मुझे अपनी मड़ैया पर जाने दो।

४ नग्रवासी-हमलोग चलकर आपको आपके महल तक पहुँचा दें।

सुदामा—बस, करो, अपनी हँसी को बन्द कर दो, यदि अपना और मेरा दोनों का भला चाहते हो तो मेरा साथ छोड़ दो मुझे अकेला ही यहाँ से जाने दो। [सुदामा घबराकर काँपने लग जाता है]

१ नग्रवासी [सबसे] हम लोगों के कारण सुदामाजी की आत्मा को कष्ट हो रहा है, जो कुछ सुदामा जी कह रहे हैं वही करना हम लोगों का धर्म है। [सुदामा से] महाराज! आप वही कीजिये जिसमें आपको सुख प्राप्त हो।

सुदामा—तुम लोग सुखी रहो—

[सबका प्रणाम कर एक ओर जाना दूसरी ओर से सुदामा का प्रस्थान]

दृश्य तीसरा।

स्थान—सुदामा के महल का द्वार।

[द्वारपाल पहरा दे रहे हैं सुदामा का प्रवेश]

सुदामा—[कुटी के स्थान पर महल देखकर घबराते हुए] हैं, यह क्या? यह विशाल भवन किस राजा का है? क्या मैं भूलकर फिर द्वारिका-

पुरी में आ गया ? [चारों ओर देखकर] चिह्न तो सब मेरे ग्राम के ही दीख पड़ते हैं, फिर यहाँ से मेरी मड़ैया क्या हो गई ? सुशीला बच्चों को लेकर कहाँ चली गई। इसी लिये मैं द्वारिका नहीं जाता था सुशीला ने जबरदस्ती ठेल कर भेजा। धन मिलना तो दूर रहा यहाँ तो गाँठ का भी सब खो गया।

(खिड़की पर सुशीला का अपनी सहेलियों सहित अपना, सुदामा को खड़े देख प्रसन्न हो सहेलियों को सुदामा के बुलाने के लिये भेजना और आप भी स्वागत के लिये जाना)

सुदामा – क्या करूँ, इन पहरेदारों से पूछूँ ? (द्वारपालों के पास जाकर) क्यों भाई द्वारपालजी ! यह राजमहल कौन से राजा का है ?

द्वारपाल—महाराज सुदामाजी का।

सुदामा—(स्वयम्) क्या सुदामा नाम का कोई राजा भी है ? क्या इस स्थान पर मेरी कुटो नहीं थी ! (प्रकट) क्यों द्वारपाल जी ! इस राज-महल को बने कितने दिन हुए ?

द्वारपाल—लगभग पन्द्रह दिन के हुए होंगे।

सुदामा—इसके पहले यहाँ पर कोई फूस की मड़ैया भी थी ?

(सुशीला को सहेलियोंका आना)

१ सहेली—हाँ हाँ, यहाँ पर आपकी मड़ैया थी।

सुदामा—तुम कौन हो ?

२ सहेली—आपकी दासियाँ।

सुदामा—(चौंक कर) मेरी दासियाँ।

३ सहेली—जी हाँ, आप की दासियाँ।

सुदामा-(स्वयम्) क्या आज मैं माया घरमें आकर फँस गया हूँ ? सब कुछ देखता हूँ सुनता हूँ पर फिर भी कुछ नहीं समझता हूँ। (प्रकट) देवियों ! अब आप लोग मुझ पर दया कर मेरा पीछा छोड़ दें नहीं तो मैं पागल हो जाऊँगा।

४ सहेली-तो कृपानाथ ! आइये महल के अन्दर पधारिये।

सुदामा-हयँ ! महल के अन्दर आइये, जान न पहिचान, फिर मुझे महल के अन्दर क्यों बुलाती हो ?

२ सहेली—संकोच न कीजिये, आइये मेरे साथ चलिये।

सदामा-क्यों किस लिये ?

१ सहेली-हमारी महारानी जी आपको बुला रही हैं।

सुदामा-(स्वयम्) ओ हो! अब तो और भी बात बढ़ गई! (प्रकट) तुम्हारी महारानी जी बुला रही हैं, और मुझे!

२ सहेली हाँ हाँ आपको।

सदामा-नहीं तू भूलती है, तेरी महारानी ने किसी दूसरे को बुलाया होगा, मुझ भिक्षुक ब्राह्मण को महल में बुलाकर क्या करेंगी?

४ सहेली-नहीं महाराज! आपही को बुलाया है।

सुदामा-मुझसे उनको क्या काम है?

१ सहेली-वहाँ चलिये तो सही, काम भी मालूम हो जायगा।

सुदामा-क्षमा करो, तुम तो मेरा माथा ही चाट गई, जाओ अपने २ घर जाओ मुझ गरीब ब्राह्मण को न सताओ। मैं वहाँ जाकर क्या करूँगा?

१ सहेली-वहाँ आपकी इज्जत होगी।

४ सहेली-वहाँ भगवान, श्रीकृष्णचन्द्रजी का गुणगान होगा जिससे आपको भी आनन्द महान होगा।

सुदामा-ठीक है, परन्तु स्त्रियों में मेरा क्या काम होगा?

१ सहेली-वहाँ आपकी भक्ति का बखान होगा।

३ सहेली-आपका भी भजन होगा, हरिगुण गान सुन कर हम सबको भी आनन्द महान होगा।

सुदामा-मुझे वहाँ न ले चलो यदि दया आवे तो कुछ भोजन की भिक्षा देकर यहाँ से चले जाने की आज्ञा दे दो।

१ सहेली-अच्छा, आइये, भण्डार घर तक चलिये केवल भोजन ही लेकर चले जाइयेगा।

सुदामा-हाँ तब मैं चलने के लिये तैयार हूँ, चलो।

(सबका प्रस्थान)

दृश्य चौथा।

स्थान-सुदामा के महल का भीतरी भाग।

सहेलियों के साथ सुदामाजी का आना

सुदामा-माई! तुम्हारा भण्डार घर कितनी दूर है?

१ सहेली-अब आही गए हैं।

सुदामा—तो मुझे भिक्षा दिलवा कर विदा करो।

२सहेली-आपको भिक्षा देनेवाली हमारी महारानीजी आरही हैं।

सुदामा- नहीं नहीं, मैं पराई स्त्री से बातें करना नहीं चाहता।

(सुशीला का आना)

सुशीला—यदि पराई स्त्री से बातें करना नहीं चाहते हैं तो अपनी स्त्री से बातें करिये। स्वामी! मैं आपको प्रणाम करती हूँ।

सुदामा -देवियों! तुम लोग इस गरीब ब्राह्मण की हँसी क्यों उड़ाती हो, मैं तो पराई स्त्री की तरफ आँख उठा कर देखना भी पाप समझता हूँ।

सुशीला—मेरे प्राणनाथ! एक बार मेरी ओर देखिये तो सही।

सुदामा-बसबस, दूरसे ही बातें करो मेरे शरीरको न छूना। राधाकृष्णर।

सुशीला-ऐ है! तुम्हें हो क्या गया है? जरा इधर देखो तो सही।

सुदामा—[स्वयम्] आवाज तो सुशीला की सी जान पड़ता है।

[सखियों का जाना, सुशीला का सुदामा के सामने आकर खड़े होना]

सुदामा—[चौंक कर] कौन सुशीला?

सुशीला—हाँ स्वामी। [आगे बढ़कर सुदामा का हाथ पकड़ना चाहती है]

सुदामा—[पीछे हटकर] अरे सुशीला, और यह राजसी ठाट।

सुशीला—यह सब ईश्वर की कृपा और आपका प्रसाद।

सुदामा—ईश्वर की कृपा को तो मैं तुझसे अधिक जानता हूँ। उन्हीं के पास से तो अभी चला आ रहा हूँ। मुझे मालूम है, कि उनसे जो मिला है, यहाँ तो कुछ और ही गुल खिला है।

सुशीला—गुल कैसा?

सुदामा—दूर हो, मेरे सामने से दूर हो।

सुशीला—स्वामी! आप क्या कह रहे हैं? मैं नहीं समझी।

सुदामा—नहीं समझी। दुराचारिणी? तूने इसी लिये मुझे जबरदस्ती द्वारिका भेजा था, नीच, कुल्टा, तूने धन के लोभ में पड़ कर अपना धर्म बेच दिया।

सुशीला—आह भगवन्! मैं यह क्या सुनती हूँ?

सुदामा—सुनती है, पर समझती नहीं? व्यभिचारिणी? मैं नहीं जानता था, कि तू मुझको द्वारिका भेज कर व्यभिचार करने का अवसर प्राप्त करना चाहती है। हा कुलकलङ्किनी! अब तू मुझे भी अपने साथ नर्क में ले जाना चाहती है।

सुशीला-नाथ ! मैं आपसे सत्य कहती हूँ, कि मैं अपने धर्म पर दृढ़ हूँ।

सुदामा--अरी दुष्टा ! तूने मुझे निधन जान किसी धनी का हाथ पकड़ा है, क्या यही इस संसार में पति-पत्नी का धर्म है ?

सुशीला--नाथ ! आपको भ्रम हो गया है, मेरे हृदय की अगाध पति-भक्ति को परमात्मा ही जानते हैं।

सुदामा--अपने किये हुए पाप को छिपाने के लिये लज्जा को न छोड़ इस पाप कर्म में प्रवृत्त होकर परमात्मा से सम्बन्ध न जोड़।

सुशीला--स्वामिनाथ ! मेरा कोई भी दोष नहीं है, यदि आपको विश्वास न हो तो जिस प्रकार चाहें परीक्षा ले लीजिये।

सुदामा--जब तेरे बदले हुए रंग रूप को मैं अपनी आँखोंसे देख रहा हूँ, तब किस बात की परीक्षा लूँ।

सुशीला--भगवन ! आपने सारे दुख दर्द को तो मिटाया परन्तु कष्ट ने अभी भी साथ नहीं छोड़ा।

सुदामा-दुख दर्द तेरा मिटा है मेरा नहीं मैं तो द्वारिका जाकर भी खाली ही हाथ लौट आया हूँ।

सुशीला--नाथ ! आप द्वारिका क्या गये जन्म भर के सब कष्टों को ही ले गये। मेरे चावलों की भेंट के बदले भगवान स्वयम् आकर मुझे सब कुछ दे गये।

सुदामा--क्या कहा ? क्या श्रीकृष्ण भगवान दे गये ?

सुशीला--हाँ वे स्वयम् आकर दे गये।

सुदामा-वह कंजूस की खोपड़ी किसी को क्या देगा ? यह सब तेरा त्रिया चरित्र है।

सुशीला--नहीं प्राणधन ! मैं सच सत्य कहती हूँ।

सुदामा--परन्तु मुझे विश्वास कैसे हो ? मैं तो उनके यहाँ से कोरा ही कोरा चला आया, मुझे तो उन्होंने एक पाई भी न दी।

सुशीला--भगवान के चरित्रों को जानना बड़ा ही कठिन काम है ! वे चुप चाप आकर इसलिये दे गये कि उनका गुप्तेश्वर नाम है।

सुदामा-मैं कुछ भी नहीं समझ रहा हूँ कि तू क्या कह रही है ? कहाँ हैं वे मेरे दोनों पुत्र कहाँ हैं ?

सुशीला--कहीं खेलते होंगे।

सुदामा—मैं उन दोनों को एक बार देख कर तपोवन की ओर जाऊँगा। अब गृहास्थाश्रम में रहकर अपनी वेइज्जती न कराऊँगा।

[रामशरन का प्रवेश]

[पिता को देखते ही दौड़कर पैर से लपट जाता है सुदामा हाथ पकड़कर उठाता है]

रामसरन-पिताजी! देखिये तो सही अब अपना घर कैसा सुन्दर बन गया है। आप भी अपने पुराने कपड़ों को बदल डालिये, घरमें से नये २ सुन्दर कपड़े मँगाकर पहन लीजिये।

सुदामा—बेटा यह घर किसका है?

रामसरन—हमारा है।

सुदामा-क्यों बेटा रामसरन! इस घरमें कभी तूने किसी आदमी को आते जाते देखा है?

रामसरन-नहीं पिताजी! इस घरमें तो कभी कोई भी नहीं आता जाता

सुशीला-[स्वगत]परमात्मा जाने इनके दिलमें यह भ्रम कैसे उत्पन्न हुआ?

सुदामा-बेटा रामसरन! यह घर और धन तुमको किसने दिया?

रामसरन—आप जिसके पास अम्माके दिये चावल लेकर गये थे उसने आकर हमारी फूस की झोपड़ी को क्षण भर में उड़ा दिया, और उसके बदले में यह सुन्दर राजमहल बना दिया।

सुदामा—इस लड़के का भी वही पाठ पढ़ाया गया है, जो चरित्र आप रचाया है। भला जिसके घर जाकर भी मैं खाली ही हाथ फिर आया वह इतना कष्ट कर यहाँ आया और सब कुछ दे गया, यह मेरे हृदय में नहीं आता।

सुशीला स्वामीनाथ! यह सब आपके मित्र की ही कृपा है।

सुदामा—बस चुप रह. मैं सब जानता हूँ। यह मित्र का नहीं तेरा फरेब है, तू मुझे अपने त्रियाजाल में फँसाना चाहती है।

सुशीला—ओ भगवन् तेरे इस चमकते हुए सुनहले महलसे तो मेरी फूसकी मड़ैया ही अच्छी थी। यह महल क्या दिया कि मेरा सब कुछ अपहरण कर लिया। तुम्हारा उपकार भी मेरे लिये अपकार होगया! तुम्हारी सम्पदा के ही कारण स्वामी के हृदय में भ्रम उत्पन्न होगया, इसका निवारण क्यों कर हो? जब स्वामी अपनी सती स्त्री को इस धन के कारण व्यभिचारिणी समझते हैं तो मैं इस धनको लेकर क्या

करूँगी ? ले लो अपने इस अमित धनको मुझसे लेलो मैं ऐसे धनको आग लगाकर फूँक दूँगी। [भगवान श्रीकृष्ण का प्रकट होना]

श्रीकृष्ण-शान्त ! सती सुशीला शान्त ! भाई सुदामा ऐसी पति-व्रता सती स्त्री पर शङ्का करना तुम्हारी भूल है। यह धन किसी दुराचारी का दिया हुआ नहीं है।

सुदामा-तो क्या यह अमोघ धन आपने ही दिया है ?

श्रीकृष्ण-नहीं इस धनको मैंने दान कर नहीं दिया है।

सुदामा-आश्चर्य की बात है, कि इस धनको न तो आपने दिया और न इसने किसी व्यभिचारी मनुष्य से प्राप्त किया, तो फिर आया कहाँ से ?

श्रीकृष्ण-यह तुम्हारी सच्ची मित्रता और प्रेम में बसे हुए दो मुट्ठी चावलों के बदले में आया है।

सुदामा-धन्य हैं, भगवान् आप धन्य हैं। आपके गुप्तदानकी महिमा को मैं न समझ सका। मुझे क्षमा करें। देवी सुशीला ! तुमको भी मेरे कहे हुए दुर्वाक्यों द्वारा जो कष्ट हुआ है उस अपराध को क्षमा कर दो।

सुशीला-नहीं प्राणनाथ ! यह बड़ा ही अच्छा हुआ, कि इस घृणित शङ्का का समाधान स्वयम् भगवान के द्वारा हो गया।

सुदामा-भगवन् ! आप मुझे अपनी अनन्य भक्ति का वरदान दीजिये ताकि मैं फिर कभी इस माया जाल में न फँसू।

श्रीकृष्ण-एवमस्तु।

सब-बोलो श्रीकृष्णचन्द्र की जय !

[सुदामा सुशीला और रामशरन का हाथ जोडकर सिर झुकाना भगवान् का आशीर्वाद देना]

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

दी प्रेस, काशी में मुद्रित।

बम्बई की थियेट्रिकल कम्पनियों के खेले हुए

असली थियेट्रिकल नाटक

अर्जुनपुत्र बभ्रुवाहन	॥)	असीरेहिर्स	॥)
आँख का नाश	।॥)	ऊषा अनिरुद्ध	॥)
कृष्ण-सुदामा	॥)	छत्रपति शिवाजी	॥)
खूने नाहक	॥)	खूबसूरतबला	॥)
जहरी साँप	॥)	दानवीरकर्ण	।॥)
द्रौपदी चीरहरण	॥)	नल-दमयन्ती	॥)
परशुराम	॥)	प्रेम-परिणाम वा वियोगिनी-शकुन्तला	।॥)
वीर अभिमन्यु	॥)	भक्त-प्रह्लाद	।॥)
वीरेन्द्र वीर	॥)	भक्त ध्रुव	॥)
भक्त सूरदास	।≡)	महाभारत	॥)
महाराणा प्रताप	॥)	मीराबाई	॥)
महारानी दुर्गावती	।॥)	रामलीला नाटक	।॥)
यहूदी की लड़की	।)	व्याकुल भारत	॥)
बिश्वामित्र	॥)	शारदाबिल या बाल-विवाह	॥)
शहीदेनाज	॥)	शीरीं-फरहाद छोटा	।-)
शिव-पार्वती	॥)	श्रवणकुमार	।≡)
शीरीं-फरहाद बड़ा	।॥)	श्रीमतीमंजरी	।॥)
श्रीभर्तृहरि नाटक	॥)	सत्य-विजय	॥)
सती अनुसूया	॥)	सावित्री-सत्यवान	॥)
सत्य-हरिश्चन्द्र	॥)		

मिलने का पता—बाबू बैजनाथ प्रसाद बुकसेलर, बनारस ।

This PDF you are browsing is in a series of several scanned documents from the Chambal Archives Collection in Etawah, UP

The Archive was collected over a lifetime through the efforts of Shri Krishna Porwal ji (b. 27 July 1951) s/o Shri Jamuna Prasad, Hindi Poet. Archivist and Knowledge Aficianado

The Archives contains around 80,000 books including old newspapers and pre-Independence Journals predominantly in Hindi and Urdu.

Several Books are from the 17th Century. Atleast two manuscripts are also in the Archives - 1786 Copy of Rama Charit Manas and another Bengali Manuscript.Also included are antique painitings, antique maps, coins, and stamps from all over the World.

Chambal Archives also has old cameras, typewriters, TVs, VCR/VCPs, Video Cassettes, Lanterns and several other Cultural and Technological Paraphernelia

Collectors and Art/Literature Lovers can contact him if they wish through his facebook page